आनन्दमठ

मूल लेखक

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक

धनप्रकाश अग्रवाल, बी० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य भण्डार

कर्नलगंज, प्रयाग

मूल्य दो रुपया

प्रकाशक—
श्री गुरुचरणदास अग्रवाल
हिन्दी-साहित्य-भण्डार
कर्नलगञ्ज, प्रयाग।

* * *

मुद्रक—
नारकली प्रेस, कर्नलगञ्ज, प्रयाग।

उपक्रमणिका

दूर तक जङ्गल ही जङ्गल। जङ्गल में अधिकतर वृक्ष शाला के हैं, परन्तु उनके अतिरिक्त और भी बहुत प्रकार के वृक्ष हैं। वृक्षों के सिरों से सिरे, पत्तों से पत्ते मिले हुए; ऐसी बहुत-सी कतारें चली गई हैं। उनमें अलगाव नहीं, छेद नहीं, प्रकाश आने का रास्ता तक बन्द, इस तरह पल्लवों का असीम समुद्र, कोसों दूर हवा की तरंगों पर तरंगें मारते लहराता चला गया है। नीचे प्रगाढ़ अन्धकार, दोपहर को भी प्रकाश अस्फुट, भयावना। उसके अन्दर कभी आदमी नहीं जाता। पत्तों के अनन्त मर्मर और जङ्गली पशु-पक्षियों की बोली के अलावा दूसरा शब्द उसके अन्दर नहीं सुनाई पड़ता।

एक तो यह बहुत ही लम्बा-चौड़ा अँधेरा जङ्गल, दूसरे रात का समय। रात का दूसरा पहर। रात बहुत अँधेरी, जङ्गल के बाहर भी अँधेरा, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जङ्गल में भीतर का अँधेरा जमीन के भीतर का जैसा अँधेरा है।'

पशु और चिड़ियाँ बिलकुल शान्त। लाखों, करोड़ों जानवर, चिड़ियाँ और कीड़े मकोड़े उस जङ्गल में रहते हैं; कोई शब्द नहीं कर रहा। बल्कि वह अन्धकार अनुभव किया जा सकता है—शब्दमयी पृथ्वी का वह निस्तब्ध भाव अनुभव किया जा सकता है। उस अनन्त शून्य जङ्गल में, सूचिभेद्य अन्धकारमय रात्रि में, उस अनुभवनीय निस्तब्धता में शब्द हुआ—'क्या मेरा मनस्काम सिद्ध नहीं होगा?'

शब्द होने के पश्चात् वह जङ्गल फिर निस्तब्धता में डूब गया। तब कौन कहेगा कि इस जङ्गल में मनुष्य का शब्द सुन पड़ा था? कुछ देर

बाद फिर शब्द हुआ; फिर उस निस्तब्धता को मथकर मनुष्य-स्वर गूँज उठा 'क्या मनस्काम सिद्ध नहीं होगा ?'

इस प्रकार तीन बार वह अन्धकार समुद्र आलोड़ित हुआ। तब उत्तर हुआ—'तुम्हारा प्रण क्या है ?'

प्रत्युत्तर में कहा गया—'प्रण मेरा जीवनसर्वस्व है।'

प्रतिशब्द हुआ—'जीवन तुच्छ है, त्याग सभी कर सकते हैं।'

'और क्या है ? और क्या है ?'

तब उत्तर आया—'भक्ति !'

———

पहला खण्ड

पहला परिच्छेद

११७६ साल की गरमियों में एक दिन पदचिह्न ग्राम में धूप बड़ी तेज थी, शिद्दत की गरमी। घरों से भरा-पूरा गाँव, परन्तु आदमी नहीं देख पड़ता। बाजार में कतार की कतार दूकानें, हाट में कतार की कतार मड़ैयाँ, टोले-टोले में सैकड़ों मिट्टी के घर, बीच-बीच में ऊँची-नीची अट्टालिकाएँ। आज सब नीरव है। बाजार में दूकानें बन्द हैं, दूकानदार कहाँ भाग गये हैं, पता नहीं। आज बाजार का दिन है, बाजार लगा नहीं। भीख का दिन है, भिखारी निकले नहीं। जुलाहे करघे का काम छोड़कर घर के एक ओर पड़े रो रहे हैं, व्यवसायी कारोबार भूलकर गोद में लड़का लिये रो रहे हैं। दानियों ने दान बन्द कर दिया है। मास्टरों ने स्कूल बन्द कर दिया है। बच्चे भी शायद अब रोने का साहस नहीं करते। आम रास्ते पर आदमजात नहीं देख पड़ता। तालाब में नहाने वाला नहीं दिखता। घर के दरवाजे पर आदमी नहीं दिखता। पेड़ पर चिड़ियाँ नहीं दिखतीं। चरागाह में पशु नहीं दिखता। सिर्फ मरघट में स्यार और कुत्ते दिख रहे हैं। एक बड़ी अट्टालिका—उसके बड़े-बड़े छड़वाले खम्भे दूर से देख पड़ते हैं—घरों के उस जङ्गल में शैलशिखर जैसी शोभा पा रही है। शोभा भी कौन सी ! उसके द्वार बन्द हैं, घर में मनुष्यों का समागम नहीं, कोई आवाज नहीं उठ रही, हवा के घुसने के लिए भी जैसे रुकावट हो। घर के भीतर कमरे में दुपहर को भी अँधेरा है। अँधेरे में, आधी रात को फूली दो कलियों-सी स्त्री पुरुष की एक जोड़ी बैठी सोच रही है। उसके सामने मन्वन्तर है।

११७४ साल की फसल अच्छी नहीं रही, इसलिए ११७५ साल में चावल का भाव कुछ बढ़ गया—लोगों को कष्ट हुआ, परन्तु राजा ने कौड़ी-कौड़ी लगान वसूल कर लिया। लगान कौड़ी-कौड़ी चुकता कर गरीब किसान एक वक्त खाकर रहे। ११७५ साल में वर्षा अच्छी हुई। लोगों ने सोचा, शायद देवता की कृपा हुई। आनन्द से फिर चरवाहों ने गोचरों में गीत गाये, किसानों की स्त्रियों ने फिर चाँदी के बाजूबन्द गढ़ा देने के लिए अपने-अपने पति से झगड़ा करना शुरू किया। एकाएक क्वार में देवता विमुख हुए। क्वार और कार्तिक में एक बूँद पानी नहीं गिरा, खेतों में धान सूखकर बिलकुल पैरा हो गया। जिनके दो-एक बिस्वांसी फला था उनका सरकार के कर्मचारियों ने सिपाहियों के लिए खरीद कर रख लिया, आदमियों को खाने को नहीं मिला। पहले एक वक्त उपवास किया, फिर रोज एक वक्त भी अधपेट रहने लगे, इसके बाद दोनों वक्त उपवास शुरू हुआ। जो कुछ थोड़ी-सी चैतवाली फसल हुई, वह मुँह तक पहुँचती-पहुँचती खत्म हो गई। परन्तु मुहम्मदरजा खाँ कर वसूल करने के अफसर थे, सोचा मैं इस वक्त सरफराज हूँगा। एक साथ दस रुपये सैकड़े के हिसाब से कर बढ़ा दिया। बङ्गाल के लोग फूट-फूट कर रोने लगे।

लोग पहले भीख माँगने लगे, इसके बाद भीख कौन दे?—उपवास करने लगे। इसके बाद रोगों के शिकार होने लगे। ढोर बेचे, फिर हल और माची बेची, बीज के धान बेचे, घर-द्वार बेचे, जर जमीन बेची। इसके बाद लड़कियाँ बेचना शुरू किया, फिर लड़के बेचने लगे। इसके बाद स्त्री बेचने लगे। इसके बाद लड़की-लड़का-स्त्री कौन खरीदे! खरीदार नहीं, सभी बेचना चाहते हैं। 'भोजन' के टोटे से पेड़ों के पत्ते खाने लगे। तरह-तरह की घास, बाँदा और घासों के दाने खाने लगे। नीच जाति के लोग कुत्ते, चूहे और बिल्लियाँ खाने लगे। बहुत भाग गये, जो भागे, वे विदेश में भूखों मरे। जो नहीं भागे, वे अखाद्य खाकर, न खाकर रोगों के शिकार होकर मृत्यु के ग्रास बने।

बीमारी का समय आया—बुखार, हैजा, क्षय और चेचक होने लगे। चेचक का खास तौर से दौरदौरा हुआ। घर-घर चेचक में लोग मरने लगे।

कौन किसे पानी दे, कौन किसे छुए! कोई किसी की दवा नहीं करता, कोई किसी को नहीं देखता; मरने पर कोई उठाकर नहीं फेंकता, बड़ी रमणीय देह अट्टालिका में अपने आप सड़ती है। जिस घर में चेचक का एक बार प्रवेश हो जाता है, उस घर के रहने वाले, रोगी छोड़कर डर से भाग जाते हैं।

महेन्द्रसिंह पदचिह्न ग्राम के बड़े धनवान् व्यक्ति हैं, लेकिन आज धनी और निर्धन की एक दर है। इस दुःख के समय रोग से ग्रस्त होकर उनके आत्मीय-स्वजन, दास-दासियाँ सभी चले गये हैं। कोई मर गया है, कोई भग गया है। उस बड़े परिवार में अब केवल वे हैं, उनकी पत्नी और एक छोटी कन्या। इन्हीं की बातें हम बता रहे थे।

उनकी पत्नी कल्याणी ने चिन्ता छोड़कर स्वयं गोशाला जाकर गाय दुही। फिर दूध गर्म करके लड़की को पिलाकर गाय को चारापानी देने गई। लौटकर आई, तब महेन्द्र ने कहा—'इस प्रकार कितने दिन चलेगा?' कल्याणी ने कहा—'बहुत अधिक दिन नहीं। जितने दिन चलता है, मैं जितने दिन चला सकूँगी; चलाती हूँ, इसके बाद तुम लड़की को लेकर शहर चले जाना।'

महेन्द्र—अगर शहर जाना है तो तुम्हें फिर इतना कष्ट क्यों दूँ? चलो न, अभी चलें।

बाद को दोनों में बहुत बातचीत हुई।

कल्याणी—शहर जाने पर क्या कोई विशेष उपकार होगा?

महेन्द्र—वह जगह भी शायद, इसी तरह जनहीन है, जान बचाने के उपाय से रहित।

कल्याणी—मुर्शिदाबाद, कासिम बाजार या कलकत्ता जाने पर जान बच सकती है। यह स्थान छोड़ देना हर तरह उचित है।

महेन्द्र ने कहा—यह घर बहुत दिनों से पुरुषानुक्रम से सञ्चित हुए धन से पूर्ण है, यह सब चोर लूट ले जायेंगे।

कल्याणी—अगर लूटने आयेंगे तो क्या हम दो आदमी रोक सकेंगे? जान नहीं बची तो धन का भोग कौन करेगा? चलो, अब भी बन्द करके

चलें। जान रही तो लौटकर भोग करेंगे।

महेन्द्र ने पूछा—क्या तुम रास्ता चल सकोगी? कहार तो सब मर गये हैं, बैल हैं तो गाड़ीवान नहीं, गाड़ीवान हैं तो बैल नहीं।

कल्याणी न मन ही मन निश्चय किया, न होगा रास्ते में मरकर पड़ी रहूँगी, फिर भी तो ये दो आदमी बचेंगे।

दूसरे दिन सुबह को दोनों ने कुछ धन साथ लेकर, द्वार-द्वार और घर में ताला लगाकर, ढेरों को खोलकर, लड़की को गोद में लेकर राजधानी की ओर यात्रा की, चलते समय महेन्द्र ने कहा—'राह बड़ी दुर्गम है। कदम-कदम पर डाकू और लुटेरे घूम रहे हैं, खाली हाथ चलना उचित नहीं।' यह कहकर महेन्द्र घर लौटकर बन्दूक और गोली-बारूद ले गये।

देखकर कल्याणी ने कहा—'अगर अस्त्र की बात सोची तो सुकुमारी को जरा लो, मैं भी अस्त्र ले आऊँ।' यह कहकर कल्याणी कन्या को महेन्द्र की गोद में देकर घर के भीतर गई।

महेन्द्र ने कहा—तुम फिर कौन-सा हथियार बाँधोगी?'

कल्याणी ने लौटकर छोटी जहर की डिबिया कपड़े में छिपा ली। दुःख के दिन भाग्य में, नहीं जाना, क्या बदा है, सोचकर कल्याणी ने पहले से जहर ले रक्खा।

जेठ का महीना, कड़कती धूप से पृथ्वी में आग उठ रही है, आसमान तपा ताँबे का चँदावा-सा, रास्ते की धूल चिनगारियों-सी। कल्याणी को पसीना आने लगा। कभी बबूल की छाँह में, कभी खजूर की छाँह में बैठकर सूखते तालाबों का गँदला पानी पीकर बड़े कष्ट से राह चलने लगीं। लड़की महेन्द्र की गोद में—रह रहकर लड़की के हवा करते गये। एक एक बार निविड़ 'श्यामल पत्रों' से रञ्जित सुगन्ध, फूलों से युक्त लता-वेष्ठित वृक्ष की छाया में बैठकर दोनों विश्राम कर लेते थे। कल्याणी की सहनशीलता देखकर महेन्द्र आश्चर्य में आ गये। कपड़े का छोर भिगोकर महेन्द्र ने पास के तालाब से जल लाकर अपने और कल्याणी के मुँह पर, हाथों पर और सर पर सिञ्चित किया।

कल्याणी कुछ ठण्डी हुई सही, परन्तु भूख से दोनों बहुत बेचैन हुए।

वह भी सही जाती है, लड़की को भूख और प्यास नहीं सही जाती इसीलिए वे फिर रास्ता चलने लगे। वे आग की लपटें तैरकर शाम से पहले एक चट्टी में पहुँचे। महेन्द्र को मन ही मन बड़ी आशा थी, चट्टी पहुँचकर स्त्री और कन्या के मुँह में ठण्डा पानी डाल सकेंगे, जान बचाने के लिए कुछ खाना खिला सकेंगे। परन्तु कहाँ! चट्टी में तो आदमी ही नहीं। बड़े-बड़े घर खाली पड़े हैं। आदमी भग गये हैं। महेन्द्र ने इधर-उधर देखकर स्त्री और कन्या को एक कमरे में लेटाया। स्वयं बाहर निकलकर ऊँची-ऊँची आवाजें लगाते हुए आदमियों को पुकारने लगे। किसी का जवाब नहीं मिला। तब महेन्द्र ने कल्याणी से कहा—'तुम जरा साहस करके अकेली रहो, देखूँ; अगर कहीं गाय हो, श्रीकृष्ण दया करें, मैं दूध लाऊँगा।' इतना कहकर एक मिट्टी का छोटा घड़ा हाथ में लेकर महेन्द्र बाहर निकले।

घड़े बहुत पड़े हुए थे।

दूसरा परिच्छेद

महेन्द्र चले गये। कल्याणी अकेली, कन्या को लिये हुए उस निर्जन अन्धकार कमरे में चारों ओर देख रही थीं। उनके मन को बड़ा भय लग रहा था। कोई कहीं नहीं, आदमी की कोई आहट भी नहीं मिलती, केवल स्यार और कुत्तों की आवाज आ रही है। वे सोच रही थीं—क्यों उन्हें मैंने जाने दिया! कुछ देर और भूख-प्यास सही जाती।' सोचा, चारों ओर से दरवाजे बन्द कर लूँ। परन्तु एक भी दरवाजे में किवाड़े या अर्गला नहीं। इस तरह चारों ओर देखते-देखते सामने के द्वार पर एक छाया सी देखी। आदमी की जैसी आकृति मालूम दी, परन्तु आदमी नहीं मालूम देता। बहुत ही सूखा, दुबला, निहायत काल रङ्ग, नङ्गा, विकट आकार के आदमी की तरह आकर दरवाजे पर खड़ा हुआ। कुछ देर बाद उस छाँह ने जैसे हाथ उठाया, हाड़ से लगे चमड़े वाले बहुत ही लम्बे सूखे हाथ की लम्बी सूखी अँगुलियों से जैसे किसी को सङ्केत करके बुलाया। कल्याणी के प्राण सूख गये। तब उसी तरह की एक और छाँह सूखी, काली, लम्बी, नङ्गी, पहले वाली छाँह के पास आकर खड़ी हुई।

इसके बाद एक और आई, इसके बाद एक और आई। कितनी ही आईं, धीरे-धीरे चुपचाप कमरे में घुसने लगीं। वह प्रायः अँधेरा रहने वाला घर आधी रात के मरघट की तरह भयङ्कर हो गया। तब प्रेत जैसी वह मूर्तियाँ कल्याणी और उनकी लड़की को घेरकर खड़ी हो गईं। कल्याणी प्रायः बेहोश हो गईं। काले-काले दुबले-दुबले वे लोग तब कल्याणी और उनकी कन्या को उठाकर घर के बाहर लाकर, खेत पार करते हुए एक जङ्गल के अन्दर ले गये।

कुछ देर बाद महेन्द्र घड़े में दूध लेकर उस जगह आकर पहुँचे। देखा कहीं कोई नहीं। इधर-उधर खोजा, लड़की का नाम लेकर, अन्त में पत्नी का नाम लेकर बहुत पुकारा, कोई उत्तर नहीं मिला, कोई पता नहीं लगा।

तीसरा परिच्छेद

जिस जङ्गल में चोरों ने कल्याणी को उतारा, वह बड़ा मनोहर जङ्गल है। उजाला नहीं, शोभा देखें ऐसी आँख भी नहीं, दरिद्र के हृदय के सौंदर्य की तरह उस जङ्गल का सौंदर्य अदृष्ट रहा। देश में भोजन रहे या न रहे, जङ्गल में फूल हैं, फूलों की सुगन्ध से उस अन्धकार में भी प्रकाश मालूम दे रहा था। बीच में साफ सुकोमल, फूलों से आवृत पृथ्वी पर चोरों ने कल्याणी और उसकी कन्या को उतारा। वे लोग उन्हें घेरकर बैठे। फिर वे लोग वाद-विवाद करने लगे कि इन्हें लेकर क्या किया जाय! जो कुछ अलङ्कार कल्याणी के साथ थे, उन लोगों ने पहले ही हाथ में कर लिये थे। एक दल उनके बँटवारे में उलझा था। अलङ्कारों का बँटवारा हो जाने पर एक चोर ने कहा—'मैं चाँदी सोना लेकर क्या करूँगा! एक थान जेवर लेकर कोई एक मुट्ठी चावल मुझे दे, भूख से जान निकल रही है, आज सिर्फ पेड़ के पत्ते खाये हुए हूँ।'

एक के यह बात कहने पर सभी वैसा कहकर गुल मचाने लगे—'चावल दो, चावल दो, भूख से जान निकल रही है, सोना चाँदी नहीं चाहिए।' सरदार उन्हें रोकने लगा लेकिन कोई रुका नहीं, क्रमशः ऊँचे गले से

बातचीत होने लगी, गालियाँ चलने लगीं, मारपीट की नौबत आ गई। जो जो जेवर बँटवारे में लोगों को मिले थे, उन्हें वहीं फेंककर गुस्से से सरदार को मारने लगे। सरदार भूख का मारा और दुबला था, दो चार हाथ पड़ते ही भूमि पर आ गया और जान छोड़ दी। तब भूखे, जागे, बदहवास चोरों में से एक ने कहा—'स्यार और कुत्तों का मांस खाया है, भूख से जान की आ पड़ी है, आओ भाइयो, आज इस मुड्डु को खायें।' तब सब आदमी 'जय काली' कहकर ऊँचा नारा लगाने लागे। बम काली! 'आज आदमी का मांस खायेंगे।' यह कहकर वे दुबली-दुबली काली-काली प्रेत जैसी मूर्तियाँ अँधेरे में खिलखिला कर हँसती हुई तालियाँ बजा बजाकर नाचने लगीं। सरदार की देह जलाने के लिए एक आदमी आग जलाने लगा। सूखी लता, लकड़ी और तिन लाकर चकमक पत्थर से आग निकाल तिन समेत लकड़ी जला दी। आग धीरे-धीरे जलने लगी, पास के आम, नीबू, कटहल, ताड़, इमली और खजूर आदि के लहलहे पेड़-पल्लव धीरे-धीरे चमकने लगे, उजाले से कहीं पत्ते झलमलाने लगे, कहीं घास; कहीं अँधेरा और गहरा हो गया। आग तैयार हो जाने पर एक आदमी मुर्दे की टाँग पकड़कर घसीटकर आग में फेंकने लगा। तब एक दूसरे ने कहा—'ठहरो, ठहरो, अगर आदमी का मांस खाकर ही आज प्राण बचाने हैं, तो इस बुड्ढे का सूखा मांस क्यों खायें? आज जो कुछ लूट ले आये हैं, वही खायेंगे। आओ, उस छोटी लड़की को जलाकर खायें।' एक दूसरे ने कहा—'जो कुछ हो जल्द भून भाई, अब भूख नहीं सही जाती।' तब सब लोग लोलुप दृष्टि से, जहाँ कल्याणी कन्या को लेकर लेटी थीं, उस ओर देखने लगे। देखा जगह खाली है, लड़की भी नहीं, माँ भी नहीं, चोरों की तकरार के वक्त मौका देखकर कल्याणी लड़की को गोद में लेकर उसके मुँह में स्तन लगाकर, जङ्गल में भग गई थी। शिकार भग गया देखकर 'मार-मार' कहते हुए वे प्रेत जैसे चार चारों तरफ दौड़े।

———

चौथा परिच्छेद

जङ्गल में घोर अन्धकार है, कल्याणी उसके भीतर रास्ता नहीं पा रही हैं। घटे हुए पेड़ों, लताओं और काँटों से एक तो रास्ता नहीं, तिस पर घना अँधेरा। काँटों के भीतर से कल्याणी जङ्गल में घुसने लगीं। लड़की के बदन में काँटे छिदने लगे। लड़की बीच-बीच में रोने लगी। कल्याणी इस तरह लोहूलुहान होती हुई जङ्गल में बहुत दूर तक चली गई। कुछ देर बाद चाँद उगा। अब तक कल्याणी के मन में कुछ भरोसा था कि अँधेरे में दस्यु उन्हें नहीं देख पायेंगे, कुछ देर तक खोजकर पीछा छोड़ देंगे; परन्तु इस समय चाँद उगने पर वह भरोसा गया। आकाश पर चढ़कर चाँद ने जङ्गल के मस्तक पर उजाला कर दिया—भीतर जङ्गल का अँधेरा उजाले से भीग गया। अन्धकार उज्ज्वल हो गया। बीच-बीच छेदों के भीतर से चाँदनी झाँकने लगी। चाँद जितना ऊँचा चढ़ने लगा, उतना और भी प्रकाश जङ्गल में होने लगा, अन्धकार और भी जङ्गल के भीतर छिपने लगा। कल्याणी लड़की को लेकर और भी जङ्गल के भीतर छिपने लगीं। तब दस्यु और भी चिल्लाते हुए चारों तरफ से दौड़कर आने लगे—लड़की भयभीत होकर और भी चिल्लाकर रोने लगी। कल्याणी तब निरस्त हुईं, फिर भागने की कोशिश उन्होंने नहीं की; एक बड़े पेड़ के नीचे कण्टकशून्य तृणमय स्थान में बैठकर लड़की को गोद में लेकर केवल पुकारने लगीं—'कहाँ हो तुम! जिन्हें मैं रोज पूजती हूँ, नित्य नमस्कार करती हूँ, जिनके भरोसे इस जङ्गल में भी प्रवेश कर सकी थी, कहाँ हो तुम मधुसूदन!' इसी समय भय से, भक्ति की प्रगाढ़ता से, भूख और प्यास की मारी कल्याणी, बाहरी ज्ञान से रहित भीतर से सचेत होकर सुनने लगीं, अन्तरिक्ष में स्वर्गीय स्वर से गाया जा रहा है—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे!
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे!
हरे मुरारे मधुकैटभारे!

कल्याणी ने बचपन से पुराणों में सुना है कि देवर्षि वीणायन्त्र से

भगवद्भजन करते हुए आकाश मार्ग से संसार का भ्रमण किया करते हैं, उनके मन में वही कल्पना जगाने लगी। मन ही मन देखने लगीं, शुभ्र शरीर, शुभ्र केश, शुभ्र वसन, महाशरीर महामुनि वीणा हाथ में लिये हुए, चाँदनी से उज्ज्वल, नीले आकाशपथ में गा रहे हैं—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

धीरे धीरे गीत पास आने लगा और भी स्पष्ट सुनने लगीं—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

धीरे धीरे और भी पास—और भी साफ—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

आखिर में कल्याणी के सर पर वनस्थली को प्रतिध्वनित कर गीत बजा—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

तब कल्याणी ने आँखें खोलीं। उस जङ्गल के अँधेरे से मिली अधखिली चाँदनी में देखा, सामने वही शुभ्र शरीर, शुभ्र केश, शुभ्र श्मश्रु (सफेद दाढ़ी मूँछवाले, शुभ्र वसन ऋषि-मूर्ति) अनमनी होती हुई भी चेतना से कल्याणी ने सोचा, 'प्रणाम करूँगी' परन्तु प्रणाम नहीं कर सकी, सर झुकाते ही अचेत होकर गिर पड़ी।

पाँचवाँ परिच्छेद

उसी जङ्गल में एक बड़े से भूखण्ड में टूटी शिलाओं से घिरा हुआ एक बड़ा मठ है। पुरातत्वविद देखने पर कह सकते थे यह पहले बौद्धों का विहार था—इसके बाद हिन्दुओं का मठ बना है। इमारत दोमञ्जिला है, बीच में भाँति-भाँति के देव मन्दिर हैं और सामने एक नाटमन्दिर, सभी चहारदीवारी से घिरी हैं, और बाहर के पेड़ों की कतारों से इस तरह ढकी हुई हैं कि दिन में भी पास से कोई नहीं समझ पाता कि यहाँ इमारतें हैं। अट्टालिकाएँ जगह-जगह से टूटी हुई हैं, परन्तु दिन में देख पड़ता है कि उन टूटी जगहों की मरम्मत की गई है। देखते ही मालूम होता है कि इस घने दुर्भेद्य जङ्गल में आदमी रहते हैं। इसी मठ की एक कोठरी में एक बड़ा कुन्दा जल रहा था, उसके भीतर कल्याणी ने पहले पहल

चेतना आने पर देखा, सामने वही शुभ्र शरीर, शुभ्र वसन महापुरुष हैं। कल्याणी विस्मित आँखों से फिर देखने लगीं, अभी उनकी स्मृति लौट नहीं रही थी। तब महापुरुष ने कहा—'माँ! देवता की जगह है, शङ्का न करना। थोड़ा-सा दूध है पियो, इसके बाद तुमसे बातें करूँगा।'

पहले तो कल्याणी कुछ भी नहीं समझ सकीं, इसके बाद क्रमशः मन में कुछ स्थिरता आने पर गले में आँचल खींचकर उस महात्मा को प्रणाम किया। उन्होंने सुमङ्गल आशीर्वाद देकर एक दूसरे कमरे से मिट्टी का महकता हुआ बरतन निकाला और उस जलती हुई आग में दूध गर्म किया। दूध गर्म होने पर उसे कल्याणी को देकर बोले—'माँ, थोड़ा-सा लड़की को पिलाओ, थोड़ा-सा खुद पियो, इसके बाद बातचीत करना!' कल्याणी प्रसन्नचित्त से कन्या को दूध पिलाने लगीं। वे महापुरुष—'मैं जब तक न आऊँ, कोई चिन्ता न करना' कहकर कमरे से बाहर गये। बाहर से कुछ देर बाद लौट आकर देखा, कल्याणी लड़की को दूध पिला चुकी हैं, लेकिन खुद कुछ भी नहीं पिया; दूध जितना था, प्रायः उतना ही है, बहुत थोड़ा खर्च हुआ है। तब उस पुरुष ने कहा—'माँ, तुमने दूध नहीं पिया, मैं फिर बाहर जा रहा हूँ, तुम्हारे दूध पिये बिना नहीं लौटूँगा।'

वे ऋषि तुल्य पुरुष यह कहकर बाहर जा रहे थे, कल्याणी ने फिर उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़े।

बनवासी ने पूछा—'क्या कहना चाहती हो?'

कल्याणी ने कहा—'मुझे दूध पीने की आज्ञा नहीं दीजिएगा। कोई बाधा है। मैं नहीं पिऊँगी।'

बनवासी ने बड़े करुण स्वर से कहा—'कौन-सी बाधा है, मुझसे कहो, मैं बनवासी ब्रह्मचारी हूँ। तुम मेरी लड़की हो, तुम्हारी ऐसी कौन-सी बात है जो मुझसे नहीं कहोगी? मैं जब जङ्गल से तुम्हें बेहोश हालत में उठा लाया, उस समय मालूम हुआ था—तुम भूख और प्यास की मारी हो, तुम नहीं खाओ-पियोगी तो बचोगी कैसे?'

तब कल्याणी ने टपकते आँसुओं से कहा—'आप देवता हैं, आपसे कहूँगी—'मेरे पति इस समय तक बिना खाये हुए हैं, उनसे मुलाकात बिना

 १८ आनन्दमठ १८ आनन्दमठ

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पहाड़ी की चोटी पर चढ़कर खड़े हुए स्तब्ध होकर सुनने लगे—क्या सुनने लगे, मैं नहीं कह सकता। उस अनन्त जैसे प्रान्तर में कोई शब्द नहीं, केवल पेड़ों का मर्मर शब्द है। एक जगह पहाड़ी के मूल के पास बड़ा जङ्गल है। ऊपर पहाड़ी, नीचे आम रास्ता, बीच में वह जङ्गल। वहाँ कैसा शब्द हुआ, मैं कह नहीं सकता, ब्रह्मचारी उसी ओर गये। घने जङ्गल में प्रवेश किया, देखा, उस जङ्गल में पेड़ों के अँधेरे के नीचे कतार की कतार पेड़ों के तने के पास आदमी बैठे हुए हैं। आदमी लम्बे आकार, काले और सशस्त्र हैं; पेड़ों के छेदों से छनती हुई चाँदनी में उनके मार्जित अस्त्र झलमला रहे हैं। ऐसे दो सौ आदमी बैठे हैं—एक शब्द भी नहीं बोल रहे। धीरे-धीरे उनके बीच में जाकर ब्रह्मचारी ने एक इशारा किया—कोई उठा नहीं, किसी ने एक बात नहीं की, किसी ने कोई शब्द नहीं किया। वे सबके सामने से सबको देखते हुए गये, जैसे किसी को खोज रहे हैं, पा नहीं रहे। खोजते-खोजते एक आदमी को पहचानकर उसका बदन छूकर इशारा किया। इशारा करते ही वह उठा। ब्रह्मचारी उसे लेकर दूर आकर खड़े हुए। यह आदमी नौजवान है। घनी काली दाढ़ी-मूछों से मुँह ढका हुआ है। तन्दुरुस्त बड़ा सुन्दर जवान है। गेरुए कपड़े पहने हुए, सब अङ्गों में चन्दन लिप्त है। ब्रह्मचारी ने इससे कहा—'भवानन्द, महेन्द्रसिंह की कोई खबर रखते हो?'

तब भवानन्द ने कहा—'महेन्द्रसिंह आज सुबह अपनी स्त्री और कन्या को लेकर घर छोड़कर जा रहा था, चट्टी में···।'

यहाँ तक कहने पर ब्रह्मचारी ने कहा—'चट्टी में जो कुछ घटित हुआ है, वह जानते हैं। किसने किया?'

भवानन्द—'शायद गाँव के किसान हैं। इस समय गाँवों के किसान-मजदूर पेट की जलन से डाकू हो गये हैं। आज-कल कौन डाकू नहीं? हम लोगों ने आज लूट खाया है—कोतवाल साहब का दो मन चावल जा रहा था, छीनकर वैष्णवों के भोग में लगाया है।'

ब्रह्मचारी ने हँसकर कहा—'चोरों के हाथ से मैंने उसकी स्त्री-कन्या को बचाया है। इस समय उन्हें मठ में रख आया हूँ। अब तुम पर भार

[illegible]

[illegible]

[illegible]

महेन्द्र एक बगल हो गये, फिर भी सिपाही उन पर चढ़कर जैसे चलने को हुए यह देखकर और सोचकर कि यह तकरार का समय नहीं, वे रास्ते के किनारे जङ्गल की बगल में उतरकर खड़े हुए।

तब एक सिपाही ने कहा—'यह एक डाकू भग रहा है।' महेन्द्र के हाथ में बन्दूक देखकर उसका यह विश्वास दृढ़ हो गया। खदेड़कर उसने महेन्द्र का गला पकड़ा और 'साले, चोर' कहकर एकाएक एक घूसा मारा और बन्दूक छीन ली। महेन्द्र खाली हाथ थे, सिर्फ घूँसा वापस किया। महेन्द्र को गुस्सा कुछ ज्यादा आ गया था, कहना अत्युक्ति है। घूँसा खाकर सिपाही घूमकर बेहोश होकर रास्ते पर गिर पड़ा। तब तीन चार सिपाही आकर महेन्द्र को पकड़कर जबरदस्ती खींचकर सेनापति साहब के पास ले गये और साहब से कहा कि इस आदमी ने एक सिपाही का खून किया है। साहब पाइप पी रहे थे, कहा—'साले को पकड़कर शादी करो।' सिपाही समझ नहीं सके कि बन्दूक लिये डाकू से वे किस तरह शादी करेंगे। परन्तु, नशा उतरने पर साहब का मत बदलेगा, शादी नहीं करनी होगी, सोचकर तीन-चार सिपाहियों ने बैलगाड़ी की रस्सी से महेन्द्र के हाथ-पैर बाँधकर गाड़ी पर रख दिया। महेन्द्र ने देखा इतने आदमियों में हाथा-पाई करना व्यर्थ है, और बलपूर्वक मुक्ति पाने पर भी क्या होगा? लड़की और स्त्री के विछोह से महेन्द्र उस समय दुखी थे, बचने की कोई इच्छा नहीं थी। सिपाहियों ने महेन्द्र को अच्छी तरह गाड़ी के पहिये से बाँधा। फिर जिस तरह सिपाही खजाना लिये जा रहे थे, उसी तरह मृदु, गम्भीर चाल से बढ़ चले।

आठवाँ परिच्छेद

ब्रह्मचारी की आज्ञा पाकर भवानन्द मन्द-मन्द स्वर से हरिनाम करते हुए जिस चट्टी में महेन्द्र बैठे थे, उसकी ओर चले। सोचा, वहीं महेन्द्र की खोज की जा सकती है।

उस समय अङ्गरेजों के बनवाये रास्ते नहीं थे। नगरों से कलकत्ता आने पर मुसलमान सम्राट के बनवाये अपूर्व रास्ते से आना पड़ता था।

महेन्द्र भी पदचिह्न से नगर जाते हुए दक्षिण से उत्तर जा रहे थे। इसीलिए रास्ते में सिपाहियों से भेंट हुई थी। भवानन्द ताल-पहाड़ से जिस चट्टी की तरफ चले, वह भी दक्षिण से उत्तर थी। चलते-चलते जल्द धन-रक्षकों से भेंट हुई। उन्होंने भी महेन्द्र की तरह सिपाहियों को रास्ता छोड़ा। एक तो सिपाहियों का सहज विश्वास था कि यह चालान लूटने के लिए डाकू अवश्य कोशिश करेंगे, इस पर रास्ते में एक डाकू को उन्होंने गिरफ्तार किया है, फलतः भवानन्द को रात के समय फिर बगल होते देखकर उन्हें विश्वास हुआ कि यह और एक डाकू है। सिपाहियों ने उन्हें भी उसी समय पकड़ लिया।

भवानन्द मधुर-मधुर हँसकर बोले—'क्यों जी, क्या है?'

सिपाही ने कहा—'तुम साले डाकू हो।'

भवानन्द—'देख रहे हो, भगवा पहने हुए ब्रह्मचारी हूँ मैं, डाकू क्या ऐसा ही होता है?'

सिपाही—'बहुत साले ब्रह्मचारी-संन्यासी डाका डालते हैं।'

यह कहकर सिपाही भवानन्द के गले में धक्के लगाता ले चला। भवानन्द की आँखें उस अँधेरे में जल उठीं, परन्तु वे और कुछ न कहकर बड़े विनीत भाव से बोले—'मालिक, क्या करना होगा, आज्ञा दीजिए।'

सिपाही भवानन्द की विनय से सन्तुष्ट होकर बोला—'लो साले सर पर एक गट्ठर लो।' यह कहकर सिपाही ने भवानन्द के सर पर एक गट्ठर रख दिया। तब एक दूसरे सिपाही ने उससे कहा—'नहीं भागेगा। उस साले को जहाँ बाँध रक्खा है, इस साले को भी गाड़ी पर वहीं बाँध रक्खो।' भवानन्द को तब और भी कौतूहल हुआ कि देखूँगा किसे बाँध रक्खा है। तब भवानन्द ने सर की गठरी फेंककर जिस सिपाही ने सर पर गठरी रखी थी, उसके गाल में एक तमाचा मारा। फलतः सिपाही ने भवानन्द को भी बाँधकर गाड़ी पर चढ़ाकर महेन्द्र के पास डाल दिया। भवानन्द ने पहचाना कि यह महेन्द्रसिंह है।

सिपाही फिर अन्यमनस्क होकर कोलाहल करते हुए चले। बैलगाड़ी के पहिए कचर-कचर आवाज करने लगे। तब भवानन्द ने धीरे-धीरे केवल

महेन्द्र सुन सकें, ऐसे स्वर से कहा—'महेन्द्रसिंह, मैं तुम्हें पहचानता हूँ, तुम्हारी मदद के लिए मैं यहाँ आया हुआ हूँ। मैं कौन हूँ, तुम्हें यह जानने की जरूरत नहीं। मैं जो कुछ कहता हूँ, सावधानी से करो। अपने हाथ का बँधना गाड़ी के पहिए पर रक्खो।'

महेन्द्र विस्मित हुए। परन्तु बिना कुछ बोले भवानन्द के कहने के अनुसार काम किया। अँधेरे में गाड़ी के पास कुछ सरककर हाथों का बँधना गाड़ी के पहिए से छुआया। पहिए की रगड़ से धीरे-धीरे रस्सी कट गई। इसके बाद पैरोंवाली रस्सी उसी तरह काटी। इस तरह बन्धन से मुक्त होकर भवानन्द के परामर्श से बिना हिले-डुले गाड़ी पर पड़े रहे। भवानन्द ने भी उसी तरह अपने बन्धन काटे। दोनों खामोश रहे।

जहाँ उस जङ्गल के पास आम सड़क पर खड़े ब्रह्मचारी ने चारों तरफ निगाह दौड़ाकर देखा था, वहीं इनका जाने का मार्ग था। उस पहाड़ के पास पहुँचने पर सिपाहियों ने देखा कि पहाड़ के नीचे एक टीले पर एक आदमी खड़ा है। चाँदनी से चमकते हुए नीले आकाश में उसका श्याम शरीर विचित्र है, देखकर हवलदार ने कहा—'एक साला और भी है वह। उसे पकड़ लाओ। मोट ढोयेगा।' तब सिपाही पकड़ने के लिए दौड़ा, वह आदमी स्थिर खड़ा हुआ, हिलता नहीं। सिपाही ने उसे पकड़ा, उसने कुछ कहा नहीं। उसे पकड़कर हवलदार के पास ले आया, फिर भी वह कुछ नहीं बोला। हवलदार ने कहा—'उसके सर पर गट्ठर रक्खो।' सिपाही ने उसके सर पर गट्ठर रक्खा। उसने गट्ठर ले लिया। तब हवलदार घूमकर गाड़ी के पीछे चला। इसी वक्त एकाएक पिस्तौल की आवाज हुई। हवलदार के सर पर गोली लगी, वह गिर गया और वहीं मर गया। 'इस साले ने हवलदार को मारा' कहकर एक सिपाही ने मोटिये का साथ पकड़ा। मोटिये के हाथ में तब भी पिस्तौल था। उसने मोट फेंककर पिस्तौल उलटकर सिपाही के सर पर मारा। सिपाही का सर फूट गया, वह निरस्त हुआ। इसी समय 'हरि! हरि! हरि!' शब्द करके दो सौ शस्त्रधारी आ गये और सिपाहियों को घेर लिया। सिपाही तब साहब के पहुँचने की राह देख रहे थे। डाकू आये सोचकर साहब भी

जल्द गाड़ी के पास आये और गाड़ी को घेरकर चौतरफा होने की आज्ञा दी। अङ्गरेज का विपत्ति के समय नशा उतर जाता है। उसी समय सिपाही चारों तरफ से सामने होकर चौतरफा खड़े हुए। अध्यक्ष की फिर आज्ञा होने पर उन लोगों ने बन्दूक उठाई। इसी समय एकाएक साहब की कमर से उनकी तलवार किसी ने छीन ली। लेकर एक ही वार से उनका सर अलग कर दिया। सर कट जाने पर साहब घोड़े से गिर गये, फिर बन्दूक चलाने का हुक्म नहीं हुआ। सबने देखा, एक आदमी गाड़ी पर खड़ा तलवार लिये, 'हरि हरि' शब्द कर रहा है और 'सिपाही मार सिपाही मार' कह रहा है। वह भवानन्द थे।

एकाएक अध्यक्ष का सर कट गया, देखकर और रक्षा के लिए किसी से आज्ञा न पाने पर सिपाही कुछ देर तक डरे हुए चुपचाप खड़े रहे। इस अवसर में तेजस्वी दस्युओं ने उनमें से बहुतों को हत और आहत करके गाड़ी के पास आकर रुपये के बक्स अपने कब्जे में कर लिये। सिपाहियों का उत्साह टूट गया, वे भग गये।

तब जो आदमी टीले पर खड़ा था और अन्त में युद्ध का प्रधान नेतृत्व लिया था, वह भवानन्द के पास आया। दोनों ने आलिङ्गन किया। भवानन्द ने कहा—'भाई जीवानन्द, तुमने सार्थक व्रत लिया था।'

जीवानन्द ने कहा—'भवानन्द! तुम्हारा नाम सार्थक हो।' लूटा हुआ धन ठिकाने करने की व्यवस्था में, जीवानन्द लगे, अपने अनुचरों के साथ वे जल्द दूसरे स्थान पर चले गये। भवानन्द अकेले खड़े रह गये।

नवाँ परिच्छेद

महेन्द्र गाड़ी से उतरकर एक सिपाही का हथियार छीनकर युद्ध में शामिल होने को थे, परन्तु ऐसे वक्त उन्हें साफ मालूम दिया कि ये लोग डाकू हैं, धन लूटने के लिए ही सिपाहियों पर हमला किया है। ऐसा विचार कर वे लड़ाई की जगह से हटकर उड़े हुए। क्योंकि डाकुओं की सहायता करने पर उनके दुराचार का हिस्सा लेना होगा। वे तलवार डालकर धीरे-धीरे वह स्थान छोड़कर जा रहे थे, ऐसे वक्त

भवानन्द उनके पास आकर खड़े हुए। महेन्द्र ने पूछा—'महाशय, आप कौन हैं?'

भवानन्द ने कहा—'तुम्हें इसकी क्या आवश्यकता?'

महेन्द्र—मुझे कुछ आवश्यकता है। आज आपसे बड़ा उपकार हुआ है।

भवानन्द—यह ज्ञान तुम्हें है, ऐसा नहीं मालूम दिया—तलवार लेकर फिर दूर ही खड़े रहे—जमींदार के लड़के घी-दूध पचाने में पटु हो, काम के वक्त बन्दर...।

भवानन्द की बात समाप्त होते न होते महेन्द्र ने घृणा से कहा—'यह कुकर्म जो है—डाका।'

भवानन्द ने कहा—डाका सही, पर हम लोगों ने तुम्हारा कुछ उपकार किया है और भी कुछ उपकार करने की इच्छा रखते हैं।

महेन्द्र—तुम लोगों ने मेरा कुछ उपकार अवश्य किया है, लेकिन और क्या उपकार करोगे और डाकू के पास इतना उपकृत होने से मेरा अनुकृत रहना अच्छा है।

भवानन्द—उपकार लो या न लो, तुम्हारी इच्छा पर है। अगर इच्छा हो, मेरे साथ आओ, तुम्हारी स्त्री और कन्या से तुम्हें मिला दूँगा।'

महेन्द्र घूमकर खड़े हो गये, बोले—वह कैसे?

भवानन्द इस बात का उत्तर दिये बिना चले। लाचार महेन्द्र भी साथ-साथ चले। सोचते रहे—ये लोग कैसे डाकू हैं?

दसवाँ परिच्छेद

उसी चाँदनी रात में दोनों प्रान्तर पार करते हुए बढ़ चले। महेंद्र नीरव, शोक से कातर गर्वित, कुछ कौतूहली हैं।

एकाएक भवानन्द ने दूसरी मूर्ति धारण की। स्थिर-मूर्ति धीर-प्रकृति संन्यासी अब नहीं, वह निपुण वीर मूर्ति, सेनाध्यक्ष का सर उतार लेनेवाली मूर्ति अब नहीं। जैसे ज्योत्स्नामयी शान्तिशालिनी प्रान्तरवन पहाड़ नदी वाली प्रकृति देखकर उनके चित्त को विशेष स्फूर्ति हुई।

जैसे—समुद्र चन्द्रोदय से हँसा हो। भवानन्द हँसमुख सवाक् प्रियभाषी हुए। बातचीत के लिए बड़े उतावले। भवानन्द ने बातचीत के लिए बड़े प्रयत्न किये, लेकिन महेंद्र ने बातचीत नहीं की। तब भवानन्द निरुपाय होकर खुद ही गाने लगे—

'वन्दे मातरम् !'
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्यश्यामलां मातरम् ।'

महेन्द्र गीत सुनकर कुछ आश्चर्य में आये, मगर समझ नहीं सके—सुजला, सुफला, मलयजशीतला शस्यश्यामला माता कौन है? पूछा—'माता कौन है? बिना उत्तर दिये भवानन्द गाने लगे—

शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम् ॥'

महेंद्र ने कहा—'यह तो देश है, यह तो माँ नहीं।'

भवानन्द ने कहा—'हम दूसरी माँ नहीं मानते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। हम कहते हैं जन्मभूमि ही जननी है, हमारे माँ नहीं, बाप नहीं, भाई नहीं—स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, घर नहीं, द्वार नहीं, हमारे है केवल वही सुजला, सुफला, मलयज समीरण शीतला, शस्य श्यामला...।'

तब समझकर महेंद्र ने कहा—'तो फिर गाओ।' भवानन्द फिर गाने लगा—

'वन्दे मातरम्।
सुजलां सुफलां मलयजशीतलां
शस्यश्यामलां मातरम्।
शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित द्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्,

सुखदां वारदां मातरम् ॥
सप्तकोटिकण्ठ-कलकल-निनाद कराले,
द्विसप्तकोटिभुजैधृन्त-खर-करवाले,
अबला केन मा एत बले ।
बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीम्
रिपुदलवारिणीं मातरम् ॥
तुमि विद्या तुमि धर्म,
तुमि हृदि तुमि मर्म,
त्वं हि प्राणा शरीरे ।
बाहुते तुम मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गड़ि मन्दिरे-मन्दिरे ।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी,
कमला कमलदलविहारिणी
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वां
नमामि कमलाममलामतुलाम्
सुजलां सुफलां मातरम्
वन्दे मातरम्
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्
धरणीं भरणीं मातरम् ॥'

महेंद्र ने देखा, दस्यु गाते-गाते रोने लगा, तब महेंद्र ने आश्चर्य से पूछा—'तुम लोग कौन हो?'

भवानन्द ने कहा—'हम लोग सन्तान हैं।'

महेंद्र—'सन्तान क्या? किसके सन्तान?'

भवानन्द—'माँ के सन्तान।'

महेंद्र—'अच्छा, सन्तान क्या चोरी करके डाका डालकर माँ की पूजा करते हैं! वह कैसी मातृभक्ति है?'

भवानन्द—'हम लोग चोरी करके डाका नहीं डालते।'

महेंद्र—'अभी-अभी तो गाड़ी लूटी!'

भवानन्द—'वह क्या चोरी डाका है! किसका रुपया लूटा!'

महेंद्र—'क्यों, राजा का।'

भवानन्द—'राजा का! यह रुपया जो वह लेगा, इस पर उसका क्या अधिकार है!'

महेंद्र—'राजा का राजभाग है।'

भवानन्द—'जो राजा राज्यपालन नहीं करता, वह फिर राजा क्या है!'

महेंद्र—'तुम लोग सिपाहियों की तोपों के सामने किसी दिन उड़ जाओगे, मालूम पड़ता है।'

भवानन्द—'बहुत साले सिपाही देखे हैं, आज भी देखे।'

महेंद्र—'अच्छी तरह नहीं देखा, एक दिन देखोगे।'

भवानन्द—'देखा न हो, लेकिन एक बार के अलावा दो बार तो नहीं मरेंगे!'

महेंद्र—'परन्तु इच्छापूर्वक मरने से लाभ!'

भवानन्द—'महेंद्रसिंह! मेरी धारणा थी कि तुम आदमी जैसे आदमी हो, लेकिन अब देखा, सब जैसे हैं, तुम भी वैसे हो, सिर्फ घी दूध के बहादुर हो, देखो, साँप मिट्टी पर छाती के बल रेंगता है, उससे नीच जीव मैंने तो और नहीं देखा, लेकिन उसकी गर्दन पर पैर रखने पर वह भी फन उठाकर खड़ा हो जाता है। क्या तुम्हारा किसी तरह भी धर्म नहीं छूटता! देखो जितने देश हैं—मगध, मिथिला, काञ्ची, काशी, दिल्ली, कशमीर किस देश की ऐसी दुर्दशा है!—किस देश के आदमी खाने को न पाकर घास खाते हैं! काँटे खाते हैं, बाँबी की मिट्टी खाते हैं, लता की पत्तियाँ खाते हैं! किस देश के आदमी सियार-कुत्ते खाते हैं, मुर्दा खाते हैं! किस देश के आदमियों को सन्दूक में रुपये रखकर स्वस्ति नहीं, सिंहासन पर शालग्राम रखकर चैन नहीं, घर में लड़की-बहू रखकर भरोसा नहीं! लड़की बहू के पेट में बच्चा रहने पर भरोसा नहीं, पेट चीरकर बच्चा निकालते हैं! सब देशों के राजों में देख-रेख सम्बन्ध है। हमारे मुसलमान राजा कहाँ रक्षा करते हैं! धर्म गया, जाति गई, मान गया, अब तो प्राण भी जा

रहे हैं। इन नशेबाज मुसलमानों को बिना भगाये क्या हिन्दुओं की हिन्दुआनी रहेगी?'

महेंद्र—'किस तरह भगाओगे?'

भवानन्द—'मारकर।'

महेंद्र—'तुम अकेले भगाओगे? एक चाँटे से?'

दस्यु ने गाया—

'सप्तकोटिकण्ठ-कलकल-निनाद कराले,

द्विसप्तकोटिभुजैधृत-खरकरवाले,

अबला केन मा एत बले,

महेंद्र—'मगर देख रहा हूँ, तुम अकेले हो।'

भवानन्द—'कैसे, अभी-अभी तो तुमने दो सौ आदमी देखे हैं।'

महेंद्र—'क्या वे सब सन्तान हैं?'

भवानन्द—'सब सन्तान हैं।'

महेंद्र—'और कितने हैं?'

भवानन्द—'ऐसे हजारों क्रमशः और होंगे?'

महेंद्र—'माना, दस-बीस हजार हुए, इससे क्या मुसलमानों का राज्य ले सकोगे?'

भवानन्द—'पलासी में अङ्गरेजों की कितनी पलटन थी?

महेंद्र—'अङ्गरेज और बङ्गाली।'

भवानन्द—'नहीं क्यों? देह की ताकत कितना काम करती है—देह में ज्यादा ताकत रही तो क्या गोले भी ज्यादा तेज चलते हैं?'

महेंद्र—'तो फिर अङ्गरेज और मुसलमानों में इतना फर्क क्यों?'

भवानन्द—'देखो अङ्गरेज जान निकल जाने पर भी नहीं भगता, मुसलमान पसीना निकलने पर भग खड़ा होता है, शरबत खोजता फिरता है, और इसके अलावा अङ्गरेज में जिद है, जो कुछ पकड़ता है वह करता है, मुसलमान ढीला है। फिर, रुपये के लिए जान देना है, पर सिपाही तनख्वाह नहीं पाते। इसके बाद आखिरी बात है हिम्मत, तोप का गोला एक जगह के अलावा दस जगह नहीं गिरेगा, इसलिए, एक गोला देखकर आदमियों के भगने की जरूरत नहीं। परन्तु गोला देखने पर मुसलमानों

का कुटुम्ब भर भग खड़ा होता है। और गोलों की भरमार देखकर तो एक भी अङ्गरेज नहीं भगता।'

महेंद्र—'तुम लोगों में यह सब गुण हैं?'

भवानन्द—'नहीं, परन्तु गुण पेड़ से नहीं गिरते। अभ्यास करना पड़ता है।'

महेंद्र—'तुम लोग क्या अभ्यास करते हो?'

भवानन्द—'देखते नहीं! हम लोग संन्यासी हैं। हमारा सन्यास इसी अभ्यास के लिए है। काम पूरा होने पर अभ्यास सब जाने पर हम लोग फिर गृहस्थ होंगे। हमारे भी स्त्री कन्या हैं!'

महेंद्र—'तुम लोग यह सब छोड़कर माया से किनारा कर सके हो!'

भवानन्द—'सन्तान को झूठ नहीं कहना चाहिए—तुम्हारे पास झूठ की बड़ाई नहीं करूँगा। माया से किनारा कौन कर सकता है! जो कहता है—मैं किनारा कर चुका हूँ, या तो उसके कभी माया नहीं था या वह झूठ ही हाँकता है। हम लोग माया से किनारा नहीं करते, हम व्रत की रक्षा करते हैं। तुम सन्तान होगे!'

महेंद्र—अपनी स्त्री-कन्या का समाचार पाये विना कुछ कह नहीं सकता।

भवानन्द—चलो, तो अपनी स्त्री-कन्या को देखो, चलो।

यह कहकर दोनों चले। भवानन्द फिर 'वन्दे मातरम्' गाने लगे। महेंद्र का गला अच्छा था, संगीत में कुछ गति और अनुराग था, इसलिए साथ गाने लगे। देखा कि गाते गाते आँखों में आँसू आते हैं। तब महेंद्र ने कहा—यदि स्त्री कन्या न छोड़नी पड़े तो यह व्रत मुझे दो।'

भवानंद—जो यह व्रत ग्रहण करता है, वह स्त्री-कन्या छोड़ता है। तुम अगर यह व्रत ग्रहण करो तो स्त्री-कन्या से मुलाकात नहीं कर पाओगे, उनकी रक्षा का उचित प्रबन्ध किया जायगा। परन्तु व्रत की सफलता तक उनका मुँह देखना मना है।

महेंद्र—यह व्रत मैं नहीं लूँगा।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

रात गुजर चुकी है। वह निर्जन जङ्गल अब तक अन्धकार, शब्दहीन था, अब आलोकमय और पक्षियों के कूजन से शब्दित होकर आनन्दमय हो गया। उसी आनन्दमय प्रभात में—आनन्दमय कानन में 'आनन्दमठ' में सत्यानन्द महाराज हरिण चर्म पर बैठे हुए हैं, सन्ध्यापूजन कर रहे हैं। पास जीवानन्द बैठे हुए हैं। ऐसे समय भवानन्द महेंद्रसिंह को साथ लेकर उपस्थित हुए। ब्रह्मचारी बिना कुछ कहे सन्ध्यापूजन करते रहे। किसी ने कोई बातचीत करने की हिम्मत नहीं की। बाद को, सन्ध्यापूजन खत्म होने पर भवानन्द और जीवानन्द दोनों ने उन्हें प्रणाम किया, और पदधूलि ग्रहण करके विनीतभाव से बैठे। तब सत्यानन्द भवानन्द को इशारे से बाहर बुला ले गये। क्या बातचीत हुई, यह हम लोग नहीं जानते। इसके बाद दोनों के मन्दिर में लौटने पर ब्रह्मचारी ने करुण सहास्य मुख से महेंद्र से कहा—'बेटा, तुम्हारे दुःख से हम लोग बहुत दुखी हुए हैं, केवल उस दीनबन्धु की कृपा से तुम्हारी स्त्री-कन्या को कल रात बचा सके हैं।' यह कहकर ब्रह्मचारी ने कल्याणी की रक्षा का हाल कहा। इसके बाद कहा—'चलो वे लोग जहाँ हैं, वहाँ तुमको ले चलें।'

यह कहकर ब्रह्मचारी आगे-आगे, महेंद्र पीछे-पीछे मन्दिर के भीतर गये। भीतर जाकर महेंद्र ने देखा, बहुत फैला हुआ और बहुत ऊँचा कमरा। इस नये सूर्य से खिलते हुए प्रभात में जब पास का कानन सूर्य की किरणों से हीरों से खचित जैसा जगमगा रहा है, तब भी उस विशाल कक्ष में प्रायः अँधेरा है। कमरे के भीतर क्या है, पहले-पहल महेंद्र नहीं देख पाये, देखते देखते क्रमशः देखा, एक बड़ी चतुर्भुजी मूर्ति है शङ्ख-चक्र गदा पद्म लिये हुए, हृदय में कौस्तुभ शोभित है, सामने सुदर्शनचक्र घूमता हुआ स्थापित है। मधुकैटभ के रूप से दो बड़ी छिन्न मस्तक मूर्तियाँ, खून जैसे बह रहा हो, इस तरह चित्रित होकर सामने हैं। बाईं ओर लक्ष्मी, मुक्तकुन्तला, कमलों की माला पहने हुए, त्रस्त हुई-सी खड़ी हैं, दाईं ओर सरस्वती पुस्तक और वीणा लिये हुए, मूर्तिमान राग और

रागनियों से घिरी हुई खड़ी हैं। विष्णु की गोद में एक मोहिनीमूर्ति है—लक्ष्मी और सरस्वती से अधिक सुन्दरी, लक्ष्मी और सरस्वती से अधिक ऐश्वर्यवाली। गन्धर्व, किन्नर देवता यक्ष और रक्ष उनकी पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मचारी ने बहुत ही गम्भीर—बहुत ही डरे स्वर से पूछा—'सब कुछ देख रहे हो?' महेंद्र ने कहा—'देखता हूँ।'

ब्रह्म०—'विष्णु की गोद में क्या है, देखा है?'

महे०—'देखा है। वे कौन हैं?'

ब्रह्म०—'माँ।'

महे०—'माँ कौन?'

'ब्रह्म०—'हम जिनके सन्तान हैं।'

महे०—'वे कौन हैं?'

ब्रह्म०—'समय पर पहचानोगे, कहो वन्दे मातरम्। अब चलो, देखो, चलो।'

तब ब्रह्मचारी महेंद्र को दूसरे कमरे में ले गये। वहाँ महेंद्र ने देखा एक अपूर्व, आठों गाँठ से भरी-पूरी सब गहने पहने हुए जगद्धात्री मूर्ति, महेंद्र ने पूछा यह कौन हैं?

ब्रह्म०—'माँ—जो थीं।'

महे०—'वह क्या?'

ब्रह्म०—'इन्होंने कुञ्जर, केशरी आदि वन के पशुओं को पैरों के तले दलित कर उन पशुओं के वासस्थान में अपना पद्मासन प्रतिष्ठित किया है। ये सब अलङ्कारों से भूषिता हास्यमयी सुन्दरी हैं। ये बाल सूर्य की आभावाली, सब ऐश्वर्यों से भरी पूरी हैं। इन्हें प्रणाम करो।'

महेंद्र ने भक्ति भाव से जगद्धात्री रूपिणी मातृभूमि को प्रणाम किया। ब्रह्मचारी ने उन्हें अँधेरी सुरङ्ग दिखाकर कहा—'इस रास्ते जाओ।'

ब्रह्मचारी खुद आगे आगे चले। महेंद्र सभय पीछे-पीछे चले। भूगर्भ के एक अँधेरे कमरे में कहीं से थोड़ी-सी रोशनी आ रही थी। उस क्षीण रोशनी में एक काली मूर्ति उन्होंने देखी।

ब्रह्मचारी ने कहा—'देखो माँ जो हुई हैं।'

महेंद्र ने सभय कहा—'काली।'

ब्रह्म०—'काली—अन्धकार-समाच्छन्ना कालिमा सर्वस्व हृत है, इसीलिए नग्ना हैं। आज देश में सर्वत्र श्मशान है—इसीलिए माँ कङ्कालमालिनी हैं। अपना शिव अपने पैरों तले दलित कर रही हैं—हाय माँ!'

ब्रह्मचारी की आँखों से दर-विगलित आँसुओं की धारा गिरने लगी। महेंद्र ने पूछा—हाथ में खेटक-खप्पर क्यों?'

ब्रह्म०—'हम लोग माँ के सन्तान हैं। अस्त्र माँ के हाथ में यही दिया है—कहो—वन्दे मातरम्।'

'वन्दे मातरम्' कहकर महेंद्र ने काली को प्रणाम किया। तब ब्रह्मचारी 'इस रास्ते आओ' कहकर दूसरी सुरङ्ग से चढ़ने लगे। एकाएक उनकी आँखों में प्रभात-सूर्य की किरणें उद्भासित हुई। चारों ओर से मधुर कण्ठ से चिड़ियाँ गा उठीं। दोनों ने देखा, सङ्गमरमर के बने प्रशस्त मन्दिर के भीतर सोने की दस भुजा प्रतिमा नवारुण किरणों में ज्योतिर्मयी होकर हँस रही हैं। ब्रह्मचारी ने प्रणाम करके कहा—ये माँ जो होंगी। दस भुजाएँ दस ओर फैली हैं। उसमें नाना आयुधों के रूप से नाना शक्तियाँ शोभित हैं। पैरों के नीचे शत्रु विमर्दित है पदाश्रित वीर केशरी शत्रु पीड़न कर रहा है। 'दिग्भुजा' कहते-कहते सत्यानन्द गद्गद होकर रोने लगे। दिग्भुजा—

'नाना प्रहरणधारिणी शत्रु विमर्दिनी—वीरेन्द्रपृष्ठविहारिणी—दाएँ लक्ष्मी भाग्यरूपिणी—बाएँ वाणी विद्याविज्ञानदायिनी—साथ बलरूपी कार्त्तिकेय, कार्यसिद्धिरूपी गणेश: आओ, हम दोनों माता को प्रणाम करें।' फिर दोनों जन हाथ जोड़कर उर्ध्वमुख होकर समस्वर से पुकारने लगे—

सर्व मङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणी नमोऽस्तु ते॥'

दोनों के भक्तिभाव से प्रणाम करके उठने पर महेन्द्र ने गद्गद स्वर से पूछा—'माता की यह मूर्ति कब देखने को मिलेगी?'

ब्रह्मचारी ने कहा—'जब माँ के सब सन्तान माँ को माँ कहकर

पुकारेंगे, उसी दिन वे प्रसन्न होंगी।

महेन्द्र ने सहसा पूछा—'मेरी स्त्री-कन्या कहाँ हैं?'

ब्रह्म०—'चलो, देखोगे, चलो।'

महेन्द्र—'उन्हें सिर्फ एक बार देखकर मैं उन्हें बिदा करूँगा।'

ब्रह्म०—'क्यों बिदा करोगे?'

महेन्द्र—'मैं यह महामन्त्र ग्रहण करूँगा।'

ब्रह्म०—'कहाँ बिदा करोगे?'

कुछ देर तक सोचकर महेन्द्र ने कहा—'मेरे घर में कोई नहीं है। मेरे और जगह भी नहीं। इस महामारी के समय स्थान भी और कहाँ पाऊँगा?'

ब्रह्म०—'जिस रास्ते यहाँ आये, उसी से मन्दिर के बाहर जाओ। मन्दिर के द्वार पर अपनी स्त्री कन्या को देखोगे। कल्याणी ने अब तक कुछ खाया नहीं। जहाँ वे लोग बैठी हैं, वहीं खाने की चीजें मिलेंगी। उसे भोजन कराकर तुम्हारी जो इच्छा हो, करना। इस समय हम में से किसी से भेंट नहीं होगी। तुम्हारा मन यदि ऐसा ही रहेगा तो यथासमय तुमसे भेंट होगी।'

इसके बाद अकस्मात् ब्रह्मचारी न जाने किस रास्ते से अन्तर्हित हो गये। महेन्द्र ने पहले के दिखलाये मार्ग से निकलकर देखा, नाट-मन्दिर में कल्याणी कन्या को लेकर बैठी हुई हैं।

इधर सत्यानन्द एक दूसरी सुरङ्ग उतरते हुए एकान्त भूगर्भकक्ष में गये वहाँ जीवानन्द और भवानन्द रुपये गिन-गिनकर, तह की तह लगा रहे थे। उस कमरे में सोने, चाँदी, ताँबे, हीरे और मोतियों की राशियाँ सजी लगी हुई थीं। विगत रात्रि की लूटवाले रुपये ये लोग सजाकर रख रहे थे। सत्यानन्द उस कमरे में बैठकर बोले—'जीवानन्द, महेन्द्र आयेगा। आने पर सन्तानों का खास तौर से उपकार होगा; क्योंकि, उसकी पूर्वपुरुषों से संचित की हुई अर्थराशि माँ की सेवा में अर्पित होगी परन्तु जितने दिन तक मन, वाणी और शरीर से वह मातृभक्त नहीं होता, उतने दिन तक उसे न लेना। तुम्हारे हाथ का काम समाप्त होने पर, तुम

लोग भिन्न-भिन्न समय में उसका पीछा किये रहना, समय समझना तो उसे विष्णु मण्डप में उपस्थित करना और समय में या असमय में उन लोगों की रक्षा करना क्योंकि जिस प्रकार दुष्ट का शासन सन्तान का धर्म है, उसी प्रकार शिष्ट की रक्षा भी धर्म है।'

बारहवाँ परिच्छेद

बड़े कष्ट के बाद महेंद्र और कल्याणी की भेंट हुई। कल्याणी रोकर लोट गई। महेंद्र और भी रोये। रोने-धोने के बाद आँसू पोंछने की बारी आई। जितनी बार वे एक दूसरे के आँसू पोंछते थे, उतनी बार फिर आँसू उमड़ पड़ते थे। आँसू रोकने के विचार से कल्याणी ने भोजन की बात चलाई। ब्रह्मचारी के सेवक ने भोजन रख दिया है, कल्याणी ने महेंद्र से खाने के लिए कहा। अकाल के दिन, अन्न और व्यञ्जन के मिलने की कोई उम्मीद नहीं, लेकिन देश में जो कुछ है, सन्तानों के पास वह सुलभ है। वह कानन साधारण लोगों के लिए अगम्य है, जहाँ जिस पेड़ में जो फल होते हैं, भूखे लोग तोड़ खाते हैं। लेकिन इस अगम्य जङ्गल के पेड़ों के फल और कोई नहीं पाता, इसलिए ब्रह्मचारी का सेवक बहुत-से वन्य फल और कुछ दूध लाकर रख जा सका था। संन्यासी महाराजों की सम्पत्ति में बहुत-सी गाएँ थीं। कल्याणी के अनुरोध से महेंद्र ने कुछ फल खाये। इसके बाद खाने से जो बचे, एकान्त में बैठकर कुछ कल्याणी ने खाये। थोड़ा-सा दूध लड़की को पिलाया, थोड़ा-सा उठाकर रख दिया, फिर पिलाने के लिए। इसके बाद नींद से दोनों सताये होने के कारण सोकर श्रम दूर करने लगे। नींद टूटने पर दोनों आलोचना करने लगे 'अब कहाँ चला जाय?' कल्याणी ने कहा 'घर में विपत्ति का विचार कर घर छोड़कर आये थे। अब देखती हूँ, घर से बाहर विपत्ति अधिक है। अब चलो, घर ही लौट चलें। महेंद्र की भी यही इच्छा है। महेंद्र चाहते हैं, कल्याणी को घर में रखकर, किसी तरह एक अभिभावक नियुक्त करके, यह परम रमणीय अपार्थिव पवित्रता से भरा मातृ-सेवा-व्रत लें। इसलिए वे सहज ही राजी हो गये। फिर दोनों आदमी, विगतश्रम होकर

बालिका को गोद में लेकर, पदचिह्न की तरफ बढ़ चले।

लेकिन किस रास्ते से पदचिह्न जाना होगा, उस दुर्भेद्य जङ्गल में निश्चय नहीं कर सके। उन लोगों ने सोचा था, जङ्गल के बाहर निकलने पर रास्ता पायेंगे। पर जङ्गल से बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिल रहा। देर तक जङ्गल के अन्दर चक्कर काटते रहे, घूम-फिरकर उसी मठ में लौट आने लगे, निकलने का रास्ता नहीं मिल रहा। सामने एक वैष्णववेश-धारी अपरिचित ब्रह्मचारी खड़े हँस रहे थे। देखकर महेंद्र ने रुष्ट होकर पूछा—हँस क्यों रहे हो गुसाईं जी?

गोस्वामी ने पूछा—तुम लोग इस जङ्गल में किस तरह घुसे?

महेंद्र—जिस तरह भी हो, घुस आये हैं।

'घुस आये हो तो निकल क्यों नहीं सकते?' यह कहकर वैष्णव फिर हँसने लगे।

महेंद्र ने रुष्ट होकर कहा—तुम हँस रहे हो, तो क्या तुम खुद निकल सकते हो?

वैष्णव ने कहा—मेरे साथ चलो। मैं रास्ता दिखा देता हूँ। तुम लोग अवश्य संन्यासी या ब्रह्मचारी के साथ घुसे होगे, नहीं तो इस मठ में आने या निकलने का रास्ता और कोई जानता नहीं।

महेंद्र ने पूछा—आप सन्तान हैं?

वैष्णव ने कहा—'हाँ, मैं भी सन्तान हूँ। मेरे साथ आओ। तुम्हें रास्ता बताने के लिए ही मैं यहाँ खड़ा हूँ।

महेंद्र ने पूछा—आपका नाम क्या है?

वैष्णव ने कहा—मेरा नाम है धीरानन्द गोस्वामी।

यह कहकर धीरानन्द आगे-आगे चले, महेंद्र और कल्याणी पीछे-पीछे। धीरानन्द बहुत ही दुर्गम रास्ते से बाहर निकलकर अकेले फिर जङ्गल के भीतर घुसे।

आनन्दावन से वे लोग बाहर आये तो कुछ दूर से पेड़ों का प्रान्तर शुरू हुआ। प्रान्तर एक तरफ रहा। जङ्गल के किनारे-किनारे आम रास्ता

है। एक जगह जङ्गल के भीतर से एक छोटी नदी कलकल करती हुई बह रही है। पानी बहुत साफ, निविड़ मेघ जैसा काला। दोनों तरफ श्यामल शोभामय नाना प्रकार के पेड़ नदी पर छाया किये हुए हैं। नाना प्रकार की चिड़ियाँ पेड़ों पर बैठी हुई कलरव कर रही हैं। वह रव, वह भी मधुर, नदी के कलरव से मिल रहा है। उसी तरह पेड़ों की छाया और जल का रङ्ग मिल रहे हैं। कल्याणी का मन भी शायद उस छाया के साथ मिला। कल्याणी नदी के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठी। पति को पास बैठने के लिए कहा। पति की गोद से कल्याणी ने बालिका को अपनी गोद में ले लिया। पति का हाथ अपने हाथ में लेकर कुछ देर तक चुपचाप बैठी रहीं। बाद को पूछा—'आज मैं तुम्हें उदास देख रही हूँ। जो विपत्ति थी उससे तो छुटकारा पा गये हो। अब इतना दुःख क्यों है?'

महेंद्र ने लम्बी साँस छोड़कर कहा—'मैं अब अपना नहीं हूँ, मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।'

कल्याणी—'क्यों?'

'तुम्हें खो देने पर मुझ पर जो बीती थी, सुनो।' यह कहकर जो घटना घटी थी, महेंद्र सुनाने लगे।

कल्याणी ने कहा—'मुझे भी बड़े दुःख, बड़ी विपत्तियाँ उठानी पड़ी हैं। तुम सुनकर और क्या करोगे? भारी विपत्ति में भी मुझे किस तरह नींद आई थी, कह नहीं सकती, परन्तु मैं कल रात समाप्त होते-होते सोई थी। सोते हुए स्वप्न में देखा—किस पुण्य से, कह नहीं सकती। मैं एक अपूर्व जगह गई हुई हूँ। वहाँ मिट्टी नहीं, सिर्फ उजाला है, बहुत ही शीतल, बादलों के बीच से निकलते उजाले की तरह बड़ा मधुर उजाला। वहाँ आदमी नहीं, सिर्फ प्रकाश की मूर्तियाँ हैं, वहाँ शब्द नहीं, केवल बहुत दूर जैसे कैसा मधुर गीत-वाद्य हो रहा है। ऐसा एक शब्द। सदा जैसे नई खिली हुई हैं, ऐसी लाखों मल्लिका, मालती और गन्धराजों की खुशबू। वहाँ जैसे सबके ऊपर, सबके दर्शनीय स्थान पर, कोई बैठे हैं जैसे नील पर्वत अग्नि-प्रभ होकर भीतर मन्द-मन्द जल रहा है। अग्निमय बृहत् किरीट उनके मस्तक पर। जैसे उनके चार हाथ हैं। उनके दोनों तरफ क्या

है, मैं पहचान नहीं सकी, जैसे स्त्री-मूर्तियाँ हों, लेकिन इतना रूप, इतना ज्योति, इतना सौरभ कि मैं उस तरफ देखते ही विह्वल होने लगी, निगाह नहीं उठा सकी, देख नहीं सकी कि कौन हैं। जैसे उस चतुर्भुज के सामने खड़ी हुई एक और स्त्री-मूर्ति है, वह भी ज्योतिर्मयी। परन्तु चारो ओर मेघ हैं। आभा अच्छी तरह निकल नहीं रही, धुँधला-धुँधला दिख रहा है कि बहुत शीर्ण है। परन्तु अत्यन्त रूपवती मर्मपीड़िता कोई स्त्रीमूर्ति रो रही है, मुझे जैसे सुगन्ध मन्द पवन की तरङ्गों पर बहाते हुए उस चतुर्भुज के सिंहासन के नीचे ला डाला। जैसे उसी मेघमण्डिता शीर्णा स्त्री ने मुझे दिखाकर कहा—यही है वह। इसी के कारण महेंद्र मेरी गोद में नहीं आ रहा।' तब एक बड़ी साफ मधुर वंशी की ध्वनि-सी हुई। उसी चतुर्भुज ने जैसे मुझसे कहा—तुम पति को छोड़कर मेरे पास आओ। ये तुम लोगों की माँ हैं, तुम्हारे पति इसकी सेवा करेंगे। तुम पति के पास रहोगी, तो इनकी सेवा नहीं होगी। तुम चली आओ।' मैंने क्या कहा, याद नहीं। मेरी नींद टूट गई। यह कहकर कल्याणी चुप हो गई।

महेंद्र विस्मित, स्तम्भित होकर चुप हो गये। सर पर पिड़की बोलने लगी। पपीहा स्वर से आकाश प्लावित करने लगा। कोयल आकाश मण्डल प्रतिध्वनित करने लगी। भृङ्गराज कल-कण्ठ से कानन कम्पित करने लगा। पैरों के तले तटिनी मृदु कल्लोल कर रही थी। हवा जङ्गली फूलों की भीनी महक ला रही थी। कहीं नदी के पानी पर बीच-बीच धूप झलमला रही थी। कहीं ताड़ के पत्ते धीमी हवा में मर्मर शब्द कर रहे थे। दूर नीले पर्वतों की श्रेणी दिखाई दे रही थी। दोनों बहुत देर तक मुग्ध होकर चुपचाप रहे। बहुत देर बाद कल्याणी ने फिर पूछा—'सोच क्या रहे हो?'

महेंद्र—क्या करूँगा, यही सोचता हूँ। स्वप्न केवल विभीषिका है, अपने मन से पैदा होकर आप लय पाता है जीवन का जलविम्ब। चलो, घर चलें।

'जहाँ देवता तुम्हें जाने के लिए कहते हैं, वहाँ जाओ।' यह कहकर कल्याणी ने बालिका को पति की गोद में दे दिया।

लड़की को गोद में लेकर महेंद्र ने पूछा—और, तुम—तुम कहाँ जाओगी ?

कल्याणी ने दोनों हाथों से आँखें ढककर सर दबाकर कहा—मुझे भी देवता ने जहाँ जाने के लिए कहा है, मैं भी वहीं जाऊँगी।

महेंद्र चौंक उठे; पूछा—वहाँ कहाँ, किस तरह जाओगी ?

कल्याणी ने जहर वाली डिबिया दिखाई।

महेंद्र ने आश्चर्य करके कहा—यह क्या ? जहर खाओगी ?

कल्याणी—सोचा था, खाऊँगी परन्तु...।

कल्याणी नीरव होकर सोचने लगीं। महेंद्र उनका मुँह देखते रहे। प्रतिपलक वर्ष मालूम देने लगा। कल्याणी ने फिर बात पूरी नहीं की, देखकर महेंद्र ने पूछा—परन्तु कहकर क्या कहना चाहती थीं ?

कल्याणी—खाऊँगी सोचा था, परन्तु तुम्हें छोड़कर; सुकुमारी को छोड़कर बैकुण्ठ जाने की भी मेरी इच्छा नहीं होती। मैं नहीं मरूँगी।

यह कहकर कल्याणी ने जहर वाली डिबिया जमीन पर रख दी। फिर दोनों भूत और भविष्यत् की बातचीत करने लगे। बातचीत करते-करते अन्यमनस्क हुए। इसी मौके पर लड़की ने खेलते-खेलते जहर वाली डिबिया उठा ली, यह किसी ने नहीं देखा।

सुकुमारी ने सोचा, यह बहुत अच्छी खेलने की चीज है। डिबिया को एक बार बाएँ हाथ में लेकर दाएँ हाथ से खूब थपथपाया। फिर दाएँ में लेकर बाएँ से थपथपाया। इसके बाद दोनों हाथों से पकड़कर खींचने लगी। डिबिया खुल गई। जहर वाली गोली गिर पड़ी।

वह छोटी गोली बाप की धोती पर गिरी। सुकुमारी ने देखा, सोचा, यह एक और खेलने की चीज है। डिबिया फेंककर हथेली मारकर गोली उठा ली।

सुकुमारी ने डिबिया मुँह में नहीं रक्खी, मगर गोली के लिए जरा भी देर नहीं की। 'प्राप्तिमात्रेण, भोक्तव्यम्' सुकुमारी ने गोली मुँह में धर ली।

'क्या खाया—क्या खाया गजब हो गया !' यह कहते हुए कल्याणी

ने लड़की के मुँह में अँगुली डाल दी। तब दोनों ने देखा कि जहर वाली डिबिया खाली पड़ी है। सुकुमारी, खिलौना पाया है, सोचकर, दाँत चबाकर—तब तक इने-गिने दाँत निकले थे—माँ के मुँह की तरफ देखकर हँसने लगी। अब तक शायद जहर की गोली का मुँह से बुरा स्वाद मालूम दिया था, क्योंकि कुछ देर बाद लड़की ने आप पाटियों को ढीला कर दिया था। कल्याणी ने मुँह से गोली निकालकर फेंक दी। लड़की रोने लगी।

गोली जमीन पर पड़ी रही। कल्याणी ने नदी से आँचल भिगोकर लड़की के मुँह में पानी डाला। बड़े दुःख से महेंद्र ने पूछा—'क्या कुछ पेट में गया होगा?'

अमङ्गल की शङ्का ही पहले माँ-बाँप के मन में उठती है, जहाँ अधिक स्नेह है, वहाँ भय ही अधिक प्रबल है। महेंद्र ने कभी देखा नहीं, वह गोली पहले कितनी बड़ी थी। अब गोली हाथ में लेकर बहुत देर तक निरीक्षण करते हुए कहा—'जान पड़ता है, बहुत-सा हिस्सा खा गई है।'

फलतः कल्याणी को भी वैसा विश्वास हुआ। काफी देर तक वे भी गोली हाथ में लेकर निरीक्षण करती रहीं। इधर लड़की ने जो दो एक घूँट निगले थे, उसके कारण कुछ विकृतावस्था होने लगी। कुछ तड़पने लगी—'रोने लगी, आखिर में कुछ अवसन्न हो गई। तब कल्याणी ने पति से कहा—'अब क्या देखते हो? जिस रास्ते देवताओं ने बुलाया है, उसी रास्ते सुकुमारी चली, मुझे भी जाना पड़ेगा।'

इतना कहकर कल्याणी जहर की गोली मुँह में डालकर क्षण भर में निगल गई।

रोते हुए महेंद्र ने कहा—'क्या किया कल्याणी, यह क्या किया?'

कल्याणी ने कोई उत्तर न देकर पति के पैरों की धूलि सिर पर रक्खी, कहा—'स्वामिन्, बात करने पर बातें बढ़ेंगी, अब मैं चली।'

'कल्याणी, क्या किया तुमने?' कहकर महेंद्र चीख मारकर रोने लगे। बहुत ही मन्द स्वर से कल्याणी कहने लगीं—मैंने अच्छा ही किया है। तुच्छ स्त्री के लिए कहीं तुम देवता के काम में जी न लगाओ। देखो, मैं

देवता की बात टाल रही थी, इसलिए मेरी लड़की गई। और अवहेलना करने पर कहीं तुम भी जाओ।'

महेंद्र रोकर बोले—'तुम्हें कहीं रख आता। हमारा काम सिद्ध होने पर फिर तुम्हें लेकर सुखी होता। कल्याणी मेरी सब कुछ है। क्यों तुमने ऐसा काम किया ? जिस हाथ की ताकत से मैं तलवार पकड़ता था, वह हाथ ही काट डाला ! तुम्हारे बिना मैं क्या हूँ ?'

कल्याणी—'मुझे कहाँ ले जाते ?—जगह कहाँ है ? माँ, बाप, बन्धु लोग इस घोर दुःसमय में सभी तो मर गये हैं। किसके घर में जगह है ? कहाँ जाने का रास्ता है ? कहाँ ले जाओगे ? मैं गले लगी बला हूँ। मैं मरी, मैंने अच्छा ही किया। मुझे आशीर्वाद दो, जिससे उसी—उसी आलोक्यमय लोक में जाकर फिर तुम्हारे दर्शन पाऊँ।'

इतना कहकर कल्याणी ने फिर पति के पैरों की धूल लेकर सिर पर रक्खी। महेंद्र कोई उत्तर न दे पाये, फिर रोने लगे।

कल्याणी ने फिर कहा—अति मृदु, अति मधुर, अति स्नेहमय कण्ठ से, फिर कहा—'देखो देवता की इच्छा है, किसकी मजाल जो टाल सके ? मुझे जाने की आज्ञा दी है, मैं मन में करके क्या रह सकती हूँ ? खुद न मरती तो अवश्य कोई दूसरा मारता। मरकर मैंने अच्छा ही किया है। तुमने जो व्रत ग्रहण किया है, तन, मन और वाणी से उसे सिद्ध करो, पुण्य होगा। मुझे उससे स्वर्ग-प्राप्ति होगी। दोनों आदमी एक साथ अनन्त स्वर्ग-भोग करेंगे।'

इधर लड़की एक बार दूध डालकर सँभली। उसके पेट में थोड़ा ही जहर गया था, जान का खतरा नहीं था। लेकिन उस समय उधर महेंद्र का ध्यान नहीं था। लड़की को कल्याणी की गोद में डालकर दोनों गाढ़ आलिङ्गन करके वे अविरत होने लगे। तब जैसे जङ्गल के भीतर से मधुर और मेघ का जैसा गम्भीर शब्द सुनाई दिया—

हरे मुरारे मधुकैटभारे !

गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !

उस समय कल्याणी पर जहर चढ़ रहा था। कुछ-कुछ बेहोशी आ

रही थी। उन्होंने उस मोह में सुना, जैसे वैकुण्ठ में सुना उसी अपूर्व वंशीध्वनि में बज रहा है—

हरे मुरारे मधुकैटभारे !
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !'

तब कल्याणी मोह के भतीर से अप्सरानिन्दित कण्ठ से पुकारने लगीं—

हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

महेंद्र से कहा—कहो—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

कानन से निकले मधुर स्वर और कल्याणी के मधुर स्वर से मुग्ध होकर कातर चित्त से ईश्वर को ही सहायक सोचकर महेंद्र ने पुकारा—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

तब चारों तरफ से ध्वनित होने लगा—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

तब जैसे पेड़ों की चिड़ियाँ भी कहने लगीं—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

नदी की कल-कल में भी जैसे शब्द उठने लगा—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

तब महेंद्र शोकताप भूल गये—पागल होकर कल्याणी के पास एक स्वर से पुकारने लगे—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

कनान से भी जैसे उनके साथ गला मिलाकर शब्द होने लगा—

'हरे मुरारे कधुकैटभारे !'

कल्याणी का गला धीरे-धीरे चीण होने लगा, फिर भी पुकार रही हैं—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

फिर धीरे-धीरे कण्ठ रुक गया; कल्याणी के मुख में अब शब्द नहीं, आँखें बन्द हुई, अङ्ग ठण्डे हो गये। महेंद्र समझे कल्याणी 'हरे मुरारे'

पुकारती हुई वैकुण्ठधाम चली गई हैं। तब पागल की भाँति उच्च स्वर से कानन को कम्पित करते हुए, पशु-पक्षियों को चौंकाकर, महेंद्र पुकारने लगे—

'हरे मुरारे, मधुकैटभारे !'

उसी वक्त कोई आकर उन्हें गाढ़ आलिङ्गन करके उनके साथ ही ऊँचे स्वर से पुकारने लगा—

'हरे मुरारे, मधुकैटभारे !'

तब उस अनन्त की महिमा में उस अनन्त जङ्गल में अनन्त-पथगामिनी की देह के सामने दोनों जन अनन्त का नाम कीर्तन करने लगे। पशु-पक्षी शान्त हैं, पृथ्वी अपूर्व शोभामयी हो रही है—इस चरम गीत का उपयुक्त मन्दिर। सत्यानन्द महेंद्र को गोद में लेकर बैठ गये।

तेरहवाँ परिच्छेद

इस तरफ राजधानी में, राजमार्ग में बड़ा गुलगपाड़ा मचा। आवाज उठी कि जितने सरकारी खजाने का कलकत्ता चालान जा रहा था, सब संन्यासियों ने लूट लिया। तब राजा की आज्ञा से संन्यासियों को पकड़ने के लिए सिपाही दौड़ने लगे। इस समय इस अकाल पीड़ित देश में यथार्थ संन्यासी बहुत नहीं थे। क्योंकि, वे भिक्षा से जीते हैं, आदमी खुद खाने को नहीं पा रहे, संन्यासी को भीख कौन देगा? इसलिए सही अर्थों में जो संन्यासी थे, सब पेट की ज्वाला से काशी-प्रयागादि की तरफ भाग गये थे। केवल सन्तान लोग स्वेच्छा से संन्यासी-वेश धारण करते थे। आवश्यकता पड़ने पर छोड़ भी देते थे। आज गुलगपाड़ा देखकर बहुतों ने संन्यासी-वेश परित्याग किया। भूखे सिपाही कहीं संन्यासी न पाकर केवल गृहस्थों की हण्डियाँ तोड़कर, आधा पेट भरकर, ठण्डे पड़े। सिर्फ सत्यानन्द किसी समय गेरुआ वस्त्र नहीं छोड़ते थे।

उसी काली कल्लोलिनी छोटी नदी के तट पर, उस पथ के किनारे ही पेड़ के नीचे कल्याणी पड़ी हुई है। महेंद्र और सत्यानन्द एक दूसरे को आलिङ्गन करके अश्रुसिक्त नेत्रों से ईश्वर को पुकार रहे हैं। जमादार

सिपाहियों को लेकर ऐसे वक्त वहाँ उपस्थित हुआ। एकाएक सत्यानन्द के गले में हाथ रखकर कहा—'यह साला संन्यासी है।'

एक दूसरे ने उसी समय महेंद्र को पकड़ लिया क्योंकि, जो संन्यासी का सङ्गी है, वह अवश्य ही संन्यासी होगा। एक तीसरा घास पर लेटी हुई कल्याणी का शव पकड़ने जा रहा था। देखा, एक स्त्री का मृत शरीर है, संन्यासी भी नहीं हो सकता। फिर नहीं पकड़ा। बालिका को भी उसी खयाल से छोड़ दिया। फिर कोई बातचीत न करके दोनों आदमियों को वे बाँधकर ले चले। कल्याणी का मृत शरीर और उसकी बालिका, बिना रखवाले के उसी पेड़ के नीचे पड़ी रहीं।

पहले शोक से अभिभूत और ईश्वर-प्रेम से उन्मत्त होकर महेंद्र प्रायः बेहोश थे। क्या हो रहा था, क्या हुआ, समझ नहीं पाये। बाँधे जाते समय हाथ-पैर नहीं हिलाये। परन्तु दो-चार कदम जाने पर समझे, हमें बाँधे ले जा रहे हैं। कल्याणी का शव पड़ा रहा, इस समय उन्हें हिंस्र जन्तु खा जा सकते हैं, यह बात मन में आते ही महेंद्र ने दोनों हाथ एक दूसरे से अलग करने को जोर लगाया। एक झटके से बन्धन टूट गया। उसी वक्त एक लात जमादार को ऐसी मारी कि जमादार साहब लोट गये, फिर एक सिपाही पर टूटे ही थे कि तीन तरफ से तीन सिपाहियों ने हमला किया और काबू में कर लिया। तब दुःख से व्याकुल होकर महेंद्र ने सत्यानन्द ब्रह्मचारी से कहा—'आप कुछ भी मदद करते तो मैं इन पाँचो दुरात्माओं की जान ले लेता।' सदानन्द ने कहा—'मेरे इस पुराने शरीर में बल क्या है, मैं जिन्हें पुकार रहा था, उनके सिवा मेरा और बल नहीं। जो अवश्य होने वाला है, उसका विरोध न करना। हम इन पाँच आदमियों को परास्त नहीं कर सकेंगे; चलो, देखो, कहाँ लिये जाते हैं। भगवान सब तरफ रक्षा करेंगे।'

फिर वे दोनों आदमी छूटने की कोई कोशिश न करके सिपाहियों के पीछे पीछे चले। कुछ दूर जाकर सत्यानन्द ने सिपाहियों से पूछा—'बेटा, मैं हरिनाम किया करता हूँ—हरिनाम जपने में कोई बाधा है?' सत्यानन्द को जमादार ने भला आदमी समझा था। उसने कहा—'तुम हरिनाम करो,

तुम्हें मना नहीं करेंगे। तुम बूढ़े ब्रह्मचारी हो; जान पड़ता है तुम्हारे छुटकारे की ही आज्ञा होगी, इस बदमाश को फाँसी होगी। तब ब्रह्मचारी मृदु स्वर से गाने लगे—

'धीरसमीरे तटनीतीरे वसति वने वर नारी।

न कुरु धनुर्धन गगनविलम्बनमतिविधुरा सुकुमारी ॥' आदि

शहर में पहुँचने पर वे लोग कोतवाल के हवाले किये गये। कोतवाल ने सरकार को सूचित करके ब्रह्मचारी औ महेंद्र को हवालात में भेज दिया। वह बड़ा ही भयङ्कर वन्दीगृह था। जो जाता था, वह प्रायः निकलता नहीं था। क्योंकि विचार करने वाला आदमी नहीं था। अँगरेजों की जेल नहीं, क्योंकि तब अँगरेजों का विचार नहीं था। आज नियम के दिन हैं, तब अनियम के दिन थे। नियम के दिन और अनियम के दिन की बराबरी करो।

चौदहवाँ परिच्छेद

रात्रि हुई। जेल में बन्द सत्यानन्द ने महेंद्र से कहा—आज बड़ी खुशी का दिन है, क्योंकि हम लोग जेल में बन्द हैं। कहो, 'हरे मुरारे!'

महेंद्र ने व्यथित स्वर से कहा—हरे मुरारे!

सत्या०—दुखी क्यों हो बेटा जी! यह व्रत लेने पर तुम्हें स्त्री-कन्या तो छोड़नी ही पड़ती, फिर तो कोई सम्बन्ध न रहता!

महेंद्र—त्याग एक बात है, यमदण्ड दूसरी बात और जिस शक्ति से मैं यह व्रत ग्रहण करता, वह शक्ति मेरी स्त्री-कन्या के साथ चली गई है।

सत्या०—शक्ति होगी। मैं शक्ति दूँगा। महामन्त्र में दीक्षित होओ, महाव्रत ग्रहण करो।

महेंद्र ने नाराजगी से कहा—मेरी स्त्री-कन्या को स्यार कुत्ते खा रहे हैं—मुझसे किसी व्रत की बात न कीजिएगा।

सत्या०—इस विषय में निश्चिन्त रहो। सन्तानों ने तुम्हारी स्त्री का संस्कार कर दिया है—लड़की को लेकर उपयुक्त जगह रक्खा है।

महेंद्र विस्मित हुए, बहुत विश्वास नहीं किया, पूछा—'आपको

किस तरह मालूम हुआ ? आप तो बराबर मेरे साथ हैं।'

सत्या०—हम लोग महाव्रत में दीक्षित हैं। देवता हम पर दया करते हैं। आज रात में ही तुम यह संवाद पाओगे। आज रात में तुम जेल से मुक्त होगे।

महेंद्र ने कोई बात नहीं की। सत्यानन्द समझे कि महेंद्र विश्वास नहीं कर रहे हैं। तब सत्यानन्द ने कहा—'विश्वास नहीं कर रहे, परीक्षा करके देखो।' यह कहकर सत्यानन्द जेल के द्वार तक आये। क्या किया, अँधेरे में महेंद्र कुछ देख नहीं पाये। परन्तु इतना समझे कि किसी से उन्होंने बातचीत की। लौट आने पर पूछा—'कैसी परीक्षा ?'

सत्या०—तुम इसी क्षण जेल से मुक्ति पाओगे।

उनके यह कहते-कहते जेल का दरवाजा खुला। एक आदमी ने कमरे के भीतर जाकर पूछा—'महेंद्रसिंह किसका नाम है ?'

महेंद्र ने कहा—'मेरा नाम है।'

आगन्तुक ने कहा—'तुम्हारे छुटकारे का हुक्म हुआ है, जा सकते हो ?'

महेंद्र पहले आश्चर्य में आये; फिर मन में कहा—झूठ बात है। परीक्षा के लिए निकले। किसी ने उनका रास्ता नहीं रोका। महेंद्र राजपथ तक चले गये।

इसी मौके पर आगन्तुक ने सत्यानन्द से कहा—महाराज, आप भी क्यों नहीं जाते ? मैं आपके लिए आया हूँ।

सत्या०—तुम कौन हो ? धीरानन्द गोसाईं ?

धीरा—जी, हाँ।

सत्या०—पहरेदार किस तरह हुए ?

धीरा०—भवानन्द ने मुझे भेजा है। शहर में आकर, आप लोग इस जेल में हैं सुनकर, यहाँ कुछ धतूरा-मिली भङ्ग ले आया था। जो खाँ साहब पहरे में थे, वे उसका सेवन कर भूमि शय्या पर लेटे हुए हैं, वह वर्दी, पगड़ी, बर्छा जो कुछ मैं पहने और लिये हुए हूँ, उन्हीं का है।

सत्या०—तुम यह सब पहने हुए शहर से बाहर निकल जाओ। मैं

इस तरह नहीं जाऊँगा।

धीरा०—क्यों ? ऐसा क्यों ?

सत्या०—आज सन्तानों की परीक्षा है।

महेंद्र लौट आये। सत्यानन्द ने पूछा—तुम क्यों लौटे ?

महेंद्र—आप अवश्य सिद्ध पुरुष हैं, अस्तु मैं आपका साथ छोड़कर नहीं जाऊँगा।

सत्या०—तो रहो। हम दोनों आज रात को दूसरी तरह आजाद होंगे।

धीरानन्द बाहर चले गये। सत्यानन्द और महेंद्र जेल में बने रहे।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

बहुतेरे लोगों ने ब्रह्मचारी का गाना सुना था। दूसरे-दूसरे आदमियों में जीवानन्द के कानों में वह गाना पड़ा। महेंद्र का पीछा पकड़ने का उन्हें हुक्म था, यह पाठकों को याद होगा। रास्ते में एक स्त्री से मुलाकात हुई थी। उसने सात दिन नहीं खाया था। रास्ते के किनारे पड़ी थी। उसे जान देने के विचार से जीवानन्द ने दो दण्ड देर की थी। स्त्री को बचाकर उसे बड़ी कुत्सित भाषा में गालियाँ देते हुए (देर का अपराध उसका है) अब आ रहे थे। देखा, प्रभु को मुसलमान पकड़े लिये जा रहे हैं—प्रभु गीत गाते जा रहे हैं।

जीवानन्द महाप्रभु सत्यानन्द के सब इशारे समझते थे।

'धीरसमीरे तटनीतीरे वसति वने वरनारी।'

दरिया के किनारे क्या और कोई स्त्री विना भोजन किये पड़ी है ? सोच विचारकर जीवानन्द दरिया के किनारे-किनारे चले। जीवानन्द ने देखा था ब्रह्मचारी स्वयं, मुसलमानों से, ले जाये जा रहे हैं। ऐसी जगह ब्रह्मचारी का उद्धार ही उनका पहला काम है। परन्तु जीवानन्द ने सोचा—'इस इशारे का वह अर्थ नहीं। उनकी—जान बचाने से उनका हुक्म मानना बड़ा है—यही उनके पास पहले सीखा है; अतएव उनका हुक्म पूरा करूँगा।'

दरिया के किनारे-किनारे जीवानन्द चले। चलते-चलते उसी वृक्ष के नीचे दरिया के किनारे देखा, एक स्त्री का मृत शरीर पड़ा है और एक जीती हुई छोटी लड़की है। पाठकों को याद होगा, महेंद्र की स्त्री-कन्या को जीवानन्द ने एक बार भी नहीं देखा। सोचा, सम्भव है कि यही महेंद्र की स्त्री-कन्या हों। क्योंकि, प्रभु के साथ महेंद्र को देखा है। खैर, माँ मर गई है, लड़की जीती है। पहले इसकी रक्षा का विधान चाहिए, नहीं तो बाघ-भालू खा जायँगे। भवानन्द महाराज यहीं कहीं हैं, वे स्त्री की अन्तिम क्रिया कर देंगे।' यह सोचकर जीवानन्द बालिका को गोद में लेकर चल पड़े।

लड़की को गोद में लेकर जीवानन्द गोसाईं उस घने जङ्गल में घुसे। जङ्गल पार कर एक छोटे गाँव में गये। गाँव का नाम भैरवीपुर है। लोग कहते हैं भरुईपुर। भरुईपुर में कुछ साधारण आदमियों के झोपड़े हैं, पास में दूसरा बड़ा गाँव नहीं, गाँव पार करने पर फिर जङ्गल है। चारों ओर जङ्गल—जङ्गल के बीच एक छोटा-सा गाँव। परन्तु गाँव बड़ा सुन्दर है। कोमल तृणों से ढकी गोचर-भूमि, कोमल श्यामल पल्लवों वाले आम, कटहल, जामुन और ताड़ के बगीचे, बीच-बीच में नीले जल से भरे सरोवर। उनके जल पर बगुले, हंस, डाहुक, किनारे कोयल, चकवे, कुछ दूर पर मोर ऊँची आवाज से बोल रहे हैं। घर-घर, सहन में गाएँ, घर के भीतर धान रखने की 'मड़ई' परन्तु आजकल अकाल में धान नहीं। किसी के छप्पर में मैना का पिंजड़ा टँगा है, किसी की दीवार पर तसवीरें खिंची हैं, किसी के आँगन में साग बोया हुआ है। सभी अकाल से पीड़ित हैं, दुबले-पतले, सन्ताप करते हुए। फिर भी इस गाँव के आदमियों में कुछ श्री का ढाँचा है। जङ्गल में बहुत तरह का मनुष्यों का खाद्य पैदा होता है, इसलिए जङ्गल से खाद्य एकत्र कर उस गाँव के रहने वाले प्राण और स्वास्थ्य की रक्षा कर पाये थे।

आम के एक बड़े बाग में एक छोटा-सा मकान है, चारों ओर मिट्टी की चहारदीवारें, चारों तरफ चार कमरे। गृहस्थ के गाएँ हैं, बकरियाँ हैं, मोर है, एक मैना है, एक तोता है। एक बन्दर था, परन्तु उसे खाने को

नहीं दे सकते, इसलिए छोड़ दिया है। एक ढेंकी है, बाहर धान की पैरियाँ लगी हैं, सहन में नेबू के पेड़ हैं; कुछ मल्लिका-जुही के पौधे, परन्तु इस बार उन्होंने कलियाँ नहीं लीं। कमरों के बरामदों में एक-एक चरखा है, परन्तु मकान में काफी आदमी नहीं। जीवानन्द कन्या को गोद में लेकर उसी मकान में घुसे।

मकान के भीतर जाकर, एक कमरे के बरामदे पर चढ़कर, जीवानन्द ने चरखा लेकर घकघकाना शुरू किया। उस छोटी बालिका ने कभी चरखे की आवाज नहीं सुनी। विशेषतः माँ से छूटने के समय से रो रही है, चरखे की आवाज सुनकर और भी ऊँचे सप्तम पर चढ़कर रोने लगी। तब कमरे के भीतर से एक सत्रह-अठारह वर्ष की लड़की बाहर निकली। कहा—'यह क्या है? दादा, चरखा क्यों चला रहे हो? यह लड़की कहाँ पाई? दादा, तुम्हारे लड़की हुई है क्या? फिर शादी की?'

जीवानन्द ने लड़की को उस युवती की गोद में देकर उसे मारने के लिए मुट्ठी बाँधी, कहा—'नकचिपटी! मेरी फिर शादी—? मुझे क्या ऐरा-गैरा समझ लिया है? क्या घर में दूध है?'

उस युवती ने कहा—'दूध है क्यों नहीं! पिओगे?'

जीवानन्द ने कहा—'हाँ, पिऊँगा।'

तब जल्दी-जल्दी दूध औटाने के लिए वह युवती गई। जीवानन्द तब तक चरखा घनघनाने लगे। लड़की उस युवती की गोद में जाकर फिर नहीं रोई। लड़की ने क्या सोचा, हम नहीं कह सकते, शायद इस युवती को कुसुम तुल्य सुन्दरी देखकर माँ समझा था। शायद चूल्हे की आँच कुछ लड़की को लगी, इसलिए एक बार रोई। रोना सुनते ही जीवानन्द ने कहा—'ओ नीमी! ओ कलमुँही! ओ बँदरिया! अभी तेरा दूध नहीं औटा गया?'

नीमी ने कहा—'औट गया है।'

इतना कहकर वह बड़ी कूँड़ी में दूध डालकर जीवानन्द के पास ले आई। जीवानन्द ने बनावटी क्रोध दिखलाते हुए कहा—'जी में आता है कि जलती कूँडी का दूध तेरे ऊपर डाल दूँ—तूने क्या सोचा है कि मैं

पिऊँगा ?'

नीमी ने पूछा—'फिर कौन पीवेगा?'

जीवा०—'वह लड़की पियेगी, देखती नहीं ? उस लड़की को दूध पिला दे।'

तब नीमी पीढ़े पर बैठकर, लड़की को गोद में लेटाकर, सूती से दूध पिलाने लगी। एकाएक उसकी आँखों से कुछ बूँद आँसू टपक पड़े। उसके एक पुत्र होकर मर गया है, उसी की वह सूती थी।

नीमी ने फिर हथेली से आँसू पोंछकर हँसते हुए, जीवानन्द से पूछा—'क्यों दादा, यह किसकी कन्या है ?'

जीवानन्द ने कहा—'तुझे इससे क्या मतलब ?'

नीमी ने कहा—'मुझे यह कन्या दोगे ?'

जीवानन्द ने कहा—'तू लेकर क्या करेगी ?'

नीमी—'मैं कन्या को दूध पिलाऊँगी, गोद में लूँगी, बड़ी करूँगी।' कहते-कहते आँखों से जल बह चला। नीमी ने फिर हथेलियों से पोंछा, फिर हँसी।

जीवानन्द ने कहा—'लेकर क्या करेगी तू ? तेरे ही कितने लड़की-लड़के होंगे।'

नीमी—'जब होंगे तब होंगे। अभी तो इस लड़की को दो। इसके बाद, न हो ले जाइएगा।'

जीवा०—'तो ले। लेकर मर। मैं बीच बीच में आकर देख जाऊँगा। यह कायस्थ की लड़की है। अब मैं चला।'

नीमी—'यह कैसे ? भोजन नहीं करोगे ? कितना दिन चढ़ आया है। दो कौर खाते जाओ, मेरी सौगन्ध है।'

लड़की को गोद में लिये नीमी जल्दी-जल्दी भोजन परोसने चली। जगह छींटकर, पीढ़ा डालकर, मल्लिका के फूल जैसे सफेद चावल, कच्ची फली की दाल, जङ्गली गूलर की तरकारी, तालाब की रोहू मछली का रसेदार और दूध लाकर जीवानन्द को खिलाने लगी। भोजन के लिए बैठे हुए जीवानन्द ने कहा—'नीमी दीदी। कौन कहता है कि मन्वन्तर है ? तुम्हारे गाँव में शायद मन्वन्तर नहीं आया।'

नीमी ने कहा—'मन्वन्तर क्यों नहीं होगा, बहुत बड़ा मन्वन्तर है। लेकिन हम दो आदमी हैं, घर में जो कुछ है, आदमियों को देते हैं स्वयं खाते हैं। हमारे गाँव में पानी बरसा था, याद नहीं? तुम वह जो कह गये थे, जङ्गल में वर्षा होती है। इस तरह हमारे गाँव में कुछ-कुछ धान हुआ था। सब आदमी शहर जाकर बेच आये। हम लोगों ने नहीं बेचा।'

जीवानन्द ने पूछा—'बहनोई जी कहाँ हैं?'

नीमी ने सिर झुकाकर धीमे कण्ठ से कहा—'दो-तीन सेर चावल लेकर कहीं गये हैं। किसी ने चावल माँगा था, सुना है।'

इधर जीवानन्द को ऐसा भोजन बहुत दिनों से नहीं नसीब हुआ। जीवानन्द ने और व्यर्थ की बातों में समय न नष्ट करके, सपासप-गपागप, कटाकट वगैरह नाना प्रकार के शब्दों से बहुत थोड़े समय में, अन्न और व्यञ्जन वगैरह खत्म किया। श्रीमती निमाई मणि ने सिर्फ अपने और पति के लिए खाना पकाया था, अपना भोजन दादा को दिया था; थाली खाली देखकर अप्रतिभ हो पति का भोजन भी लाकर परोस दिया। जीवानन्द की भौंहों में बल नहीं पड़े, उन्होंने वह सब भी उदर नाम के वृहत् गह्वर में डाल दिया। तब निमाई मणि ने पूछा—'दादा, और कुछ चाहिए?'

जीवानन्द ने पूछा—'और क्या है?'

निमाई मणि ने कहा—'एक पक्का कटहल है।'

निमाई ने वह पक्का कटहल ला दिया। कोई एतराज किये बिना, जीवानन्द गोस्वामी ने उस कटहल को भी उसी ध्वंसपुरी में प्रयाण करा दिया। तब निमाई ने हँसकर कहा—'दादा, अब कुछ नहीं है।'

दादा ने कहा—'तो जा, किसी दूसरे दिन आकर खाऊँगा।'

लाचार, निमाई ने जीवानन्द को मुँह धोने का पानी दिया। पानी देते-देते निमाई ने कहा—'दादा, मेरी एक बात रक्खोगे?'

जीवा०—'कौन-सी बात?'

निमाई—'मेरे सर की सौगन्द।'

जीवा०—कुछ कह भी, मुई।'

निमाई—'बात रक्खोगे ?'

जीवा०—'बात क्या है, पहले कहो तो।'

निमाई—'मेरे सर की सौगन्ध, तुम्हारे पैरों पड़ूँ।'

जीवा—'तेरे सर की सौगन्ध है, तू पैरों भी पड़, लेकिन बात क्या है, बता तो ?'

निमाई ने एक हाथ से दूसरे हाथ की अँगुली दबाकर, सर झुकाकर उन अँगुलियों को देखते हुए एक बार जीवानन्द के मुँह की तरफ देखकर एक बार जमीन पर निगाह डालते हुए, अन्त में जबान खोलकर पूछा—'एक बार बहू को बुला दूँ ?'

जीवानन्द हाथ धोने वाला गेड़वा उठाकर नीमी के सर पर पटकने को तैयार हो गये; कहा—'मेरी लड़की लौटाल दे, और मैं किसी दिन तेरा चावल-दाल लौटा जाऊँगा। तू बँदरिया है मुँहझौंसी, जो कुछ नहीं कहना चाहिए, मुझे कहती है।'

निमाई ने कहा—'हाँ, मैं बँदरिया हूँ, मुँहझौंसी हूँ, एक बार बहू को बुला दूँ ?'

जीवा०—'मैं चला।'

यह कहकर जीवानन्द लम्बे डग भरते हुए बाहर निकलने को हुए कि निमाई द्वार पर खड़ी हो गई; द्वार बन्द करके द्वार से पीठ लगाकर बोली—'पहले मुझे मार डालो तब तुम जाओ। बहू से भेंट किये बिना तुम जा नहीं सकते।'

जीवानन्द ने कहा—'मैंने कितने आदमियों को मार डाला है, यह तू जानती है ?'

अब नीमी को क्रोध आया, कहा—'बड़ी कीर्ति कर डाली है, स्त्री छोड़ोगे, आदमी मारोगे, और मैं तुमसे डरूँगी ! तुम जिस बाप के सन्तान हो, मैं भी उसी बाप की सन्तान हूँ; आदमी मारना अगर शेखी की बात है, तो मुझे मारकर शेखी मारो।'

जीवानन्द ने हँसकर कहा—'बुला ला, किस पापिष्ठा को बुला लायेगी, सो आ; लेकिन देख, फिर अगर ऐसी बात कहेगी, तो तुझे कुछ कहूँ या न

कहूँ, उस साले के भाई साले का सर मुड़ाकर, सर पर मट्ठा डालकर, गधे पर उल्टा चढ़ाकर देश के बाहर निकाल दूँगा।'

नीमी ने मन ही मन कहा—'तो मेरी जान में जान आये।' इतना कहकर हँसती हुई बाहर निकल गई। पास की एक कुटी के भीतर गई। कुटी में सैकड़ों गाँठवाली धोती पहने, रूखे बालवाली एक स्त्री बैठी चरखा चला रही थी, निमाई ने जाकर कहा—'बहू जल्दी।' बहू ने कहा—'जल्दी क्या री! नन्दोई जी ने तुझे मारा है क्या दर्द पर तेल लगाना है?'

नीमी—हाँ, कुछ-कुछ ऐसा ही है। घर में तेल है?'

उस स्त्री ने तेलवाली हाँडी निकाल दी। नीमी ने हाँडी से अँजुली अँजुली तेल निकालकर उस स्त्री के सर में चुपड़ दिया। जल्दी-जल्दी एक कामचलाऊ जूड़ा बाँध दिया। इसके बाद उसे एक घूँसा मारकर कहा—'तेरी वह ढाकेवाली साड़ी कहाँ है, बता न?' वह स्त्री कुछ विस्मित होकर बोली—'क्यों री, पागल तो नहीं हो गई है?'

निमाई ने धम्म से एक घूँसा पीठ पर मारकर कहा—'साड़ी निकाल!'

तमाशा देखने के लिए उस स्त्री ने साड़ी निकाली। तमाशा देखने के लिए—क्योंकि, इतने दुःख में भी तमाशा देखने की उसकी वृत्ति हृदय से लिप्त नहीं हुई। नवीन यौवन, कमल जैसी उसकी नई उम्र का सौन्दर्य, तेल नहीं, वेश नहीं, भोजन नहीं, फिर भी जलता हुआ अननुमेय सौन्दर्य उस सैकड़ों ग्रन्थि वाले वस्त्र के भीतर भी खिल रहा है। रङ्ग मे छाया-लोक का चाञ्चल्य, आँखों में कटाक्ष, ओठों में हँसी, हृदय में धैर्य। भोजन नहीं होता, फिर भी देह लावण्यमय है, बनावसिंगार नहीं, फिर भी सौन्दर्य पूरी तरह खिला हुआ है। जैसे मेघ में बिजली, जैसे मन में प्रतिमा, जैसे संसार के शब्दों में सङ्गीत, जैसे मृत्यु के भीतर सुख है, वैसे ही उस रूपराशि में अनिर्वचनीय क्या था? अनिर्वचनीय माधुर्य, अनिर्वचनीय ऊँचे भाव, अनिर्वचनीय प्रेम, अनिर्वचनीय भक्ति। उसने हँसते हुए (किसी ने वह हँसी देखी नहीं) ढाके वाली साड़ी बाहर निकाल दी। पूछा—'क्यों री नीमी, क्या होगी?' तब नीमी ने कहा—'तुम पहनोगी?' उसने पूछा—'मेरे पहनने से क्या होगा?' तब निमाई उसके

कमनीय कण्ठ में अपनी कमनीय बाहें लपेटकर बोली—'दादा आये हैं, तुझे चलने के लिए कहा है।' उसने कहा—'चलने के लिए कहा है तो ढाके की साड़ी क्यों? चल ऐसे ही चलें।' निमाई ने उसके गाल में एक चपत मारी—उसने निमाई के गले में हाथ रखकर उसे कुटी के बाहर निकाला; कहा—'चल, यह लत्ता पहनकर उन्हें देख आऊँ।' किसी तरह भी साड़ी नहीं बदली। लाचार होकर निमाई राजी हुई। निमाई उसे साथ लेकर अपने घर के दरवाजे तक गई, जाकर उसे भीतर करके दरवाजा बन्द कर आप दरवाजे पर खड़ी रही।

सोलहवाँ परिच्छेद

उस स्त्री की अवस्था लगभग पचीस वर्ष की है, किन्तु देखने पर निमाई से अधिक आयु की नहीं मालूम देती। मैली गिरह लगी धोती पहने उस घर के भीतर गई। जान पड़ा, घर प्रकाशित हो गया। जान पड़ा, पत्तों में ढकी किसी पेड़ में कितनी कलियाँ थीं, एकाएक खिल गईं। जान पड़ा, कहीं गुलाबपाश का मुँह बन्द था, किसी ने काग तोड़ दिया, किसी में जैसे गुल होते अङ्गारों पर धूप-धूना गूगुल डाल दिया। वह रूपसी घर में बैठकर इधर-उधर पति की खोज करने लगी, पहले तो नहीं देख पाई, इसके बाद देखा, घर के आँगन में एक छोटा-सा आम का पेड़ है, आम के तने से सर रक्खे हुए जीवानन्द रो रहे हैं। वह रूपसी धीरे-धीरे उनके पास गई और उनका हाथ पकड़ा। हम यह नहीं कहते कि उसकी आँखों में भी आँसू नहीं आये। ईश्वर ही जानते हैं कि उसकी आँखों से जो धारा बहना चाहती थी, बहने पर वह जीवानन्द को बहा देती, परन्तु उसने वह धारा बहने नहीं दी। हाथ में जीवानन्द का हाथ लेकर बोली—'छिः! रोओ मत, मैं जानती हूँ, तुम मेरे लिए रो रहे हो, मेरे लिए तुम मत रोओ। तुमने जिस तरह से मुझे रक्खा है मैं उसी तरह से प्रसन्न हूँ।'

जीवानन्द ने सर उठाकर, आँखें पोंछकर स्त्री से पूछा—'शान्ति! तुम्हारा यह सौ गिरहोंवाला मैला वस्त्र क्यों? तुम्हें खाने पहनने का अभाव

तो नहीं ?'

शान्ति ने कहा—'तुम्हारा धन तुम्हारे ही लिए है। रुपया लेकर क्या करना होता है, मैं नहीं जानती। जब तुम आओगे, तब तुम मुझे ग्रहण करोगे।'

जीवा०—'ग्रहण करूँगा, शान्ति! मैंने क्या तुम्हें छोड़ दिया है ?'

शान्ति—'छोड़ने की बात नहीं—जब तुम्हारा व्रत समाप्त होगा, जब फिर तुम मुझे प्यार करोगे……।'

बात पूरी न होते ही जीवानन्द शांति को दबाकर गले लगाकर, उसके कन्धे पर अपना सर रखकर, बड़ी देर तक मौन रहे। लम्बी साँस छोड़कर अन्त में कहा—'क्यों मैंने भेंट की ?'

शांति—'क्यों की ? तुमने तो अपना व्रत तोड़ दिया।'

जीवा०—व्रत टूटे प्रायश्चित है, मैं इसके लिए चिन्ता नहीं करता; परन्तु तुम्हें देखकर अब तो मैं नहीं लौट सकता। मैंने इसलिए निमाई से कहा था भेंट करने की आवश्यकता नहीं, तुम्हें देखने पर मुझसे लौटा नहीं जाता। एक ओर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और जगत-संसार है, एक ओर व्रत, होम, योग-यज्ञ है, सब एक ओर है और एक ओर हो तुम। मैं सब समय नहीं समझ पाता कि कौन ओर भारी होती है। देश तो शान्त है, देश लेकर मैं क्या करूँगा ? देश में एक बिस्वा पृथ्वी मिलने पर तुम्हें लेकर मैं स्वर्ग रच सकता हूँ, देश से मुझे काम क्या है ? देश के आदमियों का दुःख ? जिसने तुम जैसी स्त्री को पाकर त्यागा, उससे बढ़कर देश में और कौन सुखी है ? जिसने तुम्हारे अङ्गों पर सैकड़ों गिरहोंवाला वस्त्र देखा, उससे अधिक गरीब इस देश में और कौन है ? मेरे सब धर्मों की सहायिका तुम हो। उस सहायिका को जिसने छोड़ा, उसके पास फिर सनातन-धर्म क्या है ? मैं किसी धर्म के लिए कन्धे पर बन्दूक रखकर देश-देश, वन-वन, जानें ले-लेकर पाप का भार बढ़ा रहा हूँ ? पृथ्वी सन्तानों के कब्जे में आयेगी या नहीं, मैं नहीं जानता, लेकिन तुम पर मेरा अधिकार है, तुम पृथ्वी से बड़ी हो, तुम मेरी स्वर्ग हो। चलो घर चलें—अब मैं वापस नहीं जाऊँगा।'

शान्ति कुछ क्षण तक बात नहीं कर सकी। इसके बाद कहा—'छिः! तुम वीर हो। धरती में मेरा बड़ा सुख यह है कि मैं वीर-पत्नी हूँ। तुम अधर्म स्त्री के लिए वीर-धर्म त्यागोगे? तुम अब मुझे प्यार न करना—मैं वह सुख नहीं चाहती—लेकिन तुम अपना वीर-धर्म कभी न त्यागना। देखो, एक बात कहते जाओ—इस व्रतभङ्ग का प्रायश्चित्त क्या है?'

जीवानंद ने कहा—'प्रायश्चित्त है दान, उपवास और बारह काहन कौड़ी।'

शांति मुस्कराई। बोली—'प्रायश्चित्त क्या है, यह मैं जानती हूँ। एक अपराध से जो प्रायश्चित्त है, सौ अपराध से भी क्या वही है?'

जीवानंद आश्चर्य में आये, उनका मुख फीका पड़ गया, पूछा—'ये बातें क्यों करती हो?'

शांति—एक भीख माँगती हूँ। मुझसे फिर भेंट न होने तक प्रायश्चित्त न करना।'

तब जीवानन्द हँसकर बोले—'इस विषय में निश्चिन्त रहो। तुम्हें बिना देखे मैं मरूँगा नहीं। मरने की ऐसी जल्दी भी नहीं। मैं अब और यहाँ नहीं रहूँगा। लेकिन नेत्र भरकर तुम्हें नहीं देख पाया, एक दिन अवश्य इस तरह देखूँगा, एक दिन अवश्य हमारी अभिलाषा पूर्ण होगी। मैं अब चला, मेरा एक अनुरोध रखना। यह वेशभूषा छोड़ो। मेरे पुश्तैनी घर में जाकर रहो।'

शांति ने पूछा—'तुम इस समय कहाँ जाओगे?'

जीवा०—'अभी मठ से ब्रह्मचारी की खोज में जाऊँगा। वे जिस तरह शहर गये हैं, इससे कुछ चिन्ता हो गई है, मन्दिर में उनका पता न लगा तो शहर चला जाऊँगा।'

सत्रहवाँ परिच्छेद

मठ के अंदर बैठे हुए भवानंद ईश्वर के गुण गा रहे थे, ऐसे समय उतरे मुख से ज्ञानानंद नाम के एक तेजस्वी संतान उनके पास आकर उपस्थित हुए। भवानंद ने पूछा—'गोसाईं जी, चेहरा इतना उतर

क्यों है!'

ज्ञानानंद ने कहा—'कुछ फसाद खड़ा हुआ है। कल वाले मामले के लिए सिपाही गेरुआ वस्त्र देखते हैं और पकड़ते हैं। प्रायः सभी संतानों ने आज गेरुआ वस्त्र छोड़ दिया है। केवल सत्यानंद महाराज गेरुआ पहने हुए अकेले नगर की ओर गये। क्या मालूम अगर वे मुसलमानों के हाथ पड़ें।'

भवानंद ने कहा—'उन्हें रोक रक्खे, ऐसा मुसलमान बङ्गाल में नहीं। धीरानंद उनके पीछे गये हैं, जानता हूँ। फिर भी मैं एक बार नगर घूम आऊँ, तुम मठ की रक्षा करना।'

यह कहकर भवानंद एक एकान्त कमरे में गये और बड़े सन्दूक से कुछ हथियार निकाले। एकाएक भवानंद का रूप बदल गया। गेरुआ वस्त्र की जगह चूड़ीदार पाजामा, मिरजई, पटुका, अम्मामा और पैरों में नरी के जूते शोभा देने लगे। मस्तक से त्रिपुण्डादि चन्दन-चिह्न सब विलुप्त कर दिये। भौंरे-सी काली मूछ और दाढ़ी से भरा सुन्दर मुख अपूर्व शोभा देने लगा। उस वक्त उन्हें देखकर मुगल-जाति का युवा जान पड़ने लगा। भवानन्द इस प्रकार मुगल बनकर सशस्त्र हो मठ से बाहर निकले। वहाँ से एक कोस दूर दो छोटी-छोटी पहाड़ियाँ थीं। उन पहाड़ियों पर जङ्गल चढ़ता गया है। दोनों पहाड़ियों के बीच में एक एकान्त जगह है, वहाँ कुछ घोड़े बँधे हुए थे। मठवालों की अश्व-शाला यहीं है। भवानंद उनमें से एक घोड़ा खोलकर उस पर सवार हुए और शहर की तरफ बढ़े।

बढ़ते-बढ़ते सहसा उनकी गति रुकी। उसी रास्ते के किनारे, कलकल स्वर से बढ़ती हुई नदी के तट पर, आकाश से गिरी तारिका-सी, मेघ माला से च्युत विद्युत-सी दीप्ति स्त्री-मूर्ति लेटी हुई देखी। देखा, जीवन का कोई भी लक्षण उसमें नहीं—जहर की खाली डिबिया पड़ी हुई है।

भवानंद आश्चर्य में आये, क्षुब्ध हुए और डरे।

जीवानन्द की तरह भवानंद ने भी महेंद्र की स्त्री-कन्या को नहीं

देखा। जीवानंद ने जिस कारणों से संदेह किया था कि ये महेंद्र की स्त्री-कन्या हो सकती हैं, भवानंद के पास वे सब कारण नहीं। उन्होंने ब्रह्मचारी और महेंद्र को बन्दी होकर ले जाये जाते नहीं देखा। लड़की भी वहाँ नहीं। डिबिया देखकर समझे, यह कोई स्त्री जहर खाकर मरी है। भवानंद उस लाश के पास बैठे; बैठकर गाल से हथेली लगाये हुए देर तक सोचते रहे। सर में, बगल में, हाथ में, दायें-बायें हाथ लगाकर देखा, बहुत तरह से दूसरों की न जानी हुई परीक्षाएँ कीं; फिर मन ही मन कहा—'अब भी समय है, परन्तु बचाकर क्या करूँगा?' इस तरह भवानंद ने देर तक विचार किया, विचार करके वन में बैठकर एक पेड़ के कुछ पत्ते ले आये। पत्ते गोदरी में मसलकर रस निकाल कर उस लाश के ओठों और दाँतों की पाटियों में अँगुली डालकर, फैलाकर कुछ रस भीतर चला दिया। फिर नाक में कुछ रस डाला और अङ्गों में वह मलने लगे। बार-बार ऐसा करने लगे, बीच-बीच नाक के पास हाथ ले जाकर देखने लगे कि साँस चल रही है या नहीं। जान पड़ा, प्रयत्न विफल हो रहा है। इस तरह बहुत देर परीक्षा करते-करते भवानंद का चेहरा कुछ प्रफुल्ल हुआ—अँगुली में साँस के धीमे-धीमे बहने का कुछ अनुभव उन्होंने किया। तब और पत्तों का रस निचोड़ने लगे। धीरे-धीरे करके साँस तेज चलने लगी। भवानंद ने नाड़ी पर हाथ रखकर देखा, नाड़ी चलने लगी थी। अंत में धीरे-धीरे पूर्व की तरफ प्रथम प्रभात-राग के विकास की भाँति प्रभात-पद्म के प्रथम उन्मेष की भाँति, प्रथम प्रेमानुभव की भाँति कल्याणी नेत्र खोलने लगी। देखकर भवानंद उस अर्द्ध-जीवित शरीर को घोड़े पर रखकर तेज चाल से घोड़ा भगाते हुए नगर की तरफ गये।

अठाहरवाँ परिच्छेद

संध्या होने से पूर्व संतान सम्प्रदाय के लोग जान गये कि सत्यानंद ब्रह्मचारी और महेंद्र गिरफ्तार करके नगर की जेल में कैद किये गये हैं। तब एक-एक, दो-दो दस-दस, सौ-सौ संतान-सम्प्रदाय के लोग आ-आकर

उस देवालय को घेरने वाले जङ्गल को भरने लगे। सभी हथियार लिये हुए थे। आँखों में गुस्से की चिनगारी, मुख पर दम्भ, ओठों में प्रतिज्ञा। पहले सौ, फिर हजार, फिर दो हजार, इस तरह लोगों की संख्या बढ़ने लगी। तब मठ के दरवाजे पर खड़े हुए ज्ञानानंद तलवार हाथ में लिये हुए ऊँचे स्वर से कहने लगे—'हम लोगों ने बहुत दिनों से सोच रक्खा है कि ये बयों के घोसले नष्ट कर यवनपुरी नष्ट-भ्रष्ट करके नदी में बहा देंगे। ये सुअरों के अड्डे जलाकर माता वसुमती को फिर से पवित्र करेंगे। भाइयो, आज वह दिन आया है। हमारे गुरु के गुरु, परम गुरु, जो अनन्त ज्ञानमय हैं, सदा शुद्धाचार, जो लोगों का कल्याण करते हैं, देश का कल्याण करते हैं, सनातन-धर्म के पुनः प्रचार के लिए शरीर दे देने की जिन्होंने प्रतिज्ञा की है, जिन्हें हम विष्णु का अवतार मानते हैं, जो हमारी मुक्ति के उपाय हैं, वे आज मुसलमान की जेल में कैद हैं। क्या हमारी तलवारों में धार नहीं?' हाथ फैलाकर ज्ञानानंद ने कहा—'इन भुजाओं में क्या बल नहीं?' छाती ठोंककर कहा—'इस हृदय में क्या साहस नहीं?—भाइयो, कहो, हरे मुरारे मधुकैटभारे—जिन्होंने मधु-कैटभ का विनाश किया है, जिन्होंने हिरण्यकशिपु, कंस, दन्तवक्र, शिशुपाल आदि दुर्जय असुरों को मारा है, जिनके चक्र के घर्घर-घोष से मृत्युञ्जय शम्भु भी भयभीत हुए थे—जो अजेय हैं, युद्ध में जयदाता, हम उनके उपासक हैं, उनके बल से हमारी भुजाओं में अनन्त बल है। वे इच्छामय हैं, इच्छा करने से ही हम लड़ाई जीतेंगे। चलो हम लोग वह यवनपुरी तोड़कर धूल में मिला दें, वे सुअरों के अड्डे जलाकर नदी में बहा दें, वे बयों के घोंसले नष्ट कर तिनके हवा में उड़ा दें। बोलो—हरे मुरारे मधुकैटभारे!

फिर उस वन में बड़े भयङ्कर स्वर से सहस्र कण्ठों की एक साथ ध्वनि हुई—'हरे मुरारे मधुकैटभारे! हजार तलवारें एक साथ झनझना उठीं हजार बल्लमों के फलक एक साथ ऊपर को उठे। उसी समय सैकड़ों जंगी ढोल एक साथ बज उठे। 'हरे मुरारे मधुकैटभारे!' कहकर जङ्गल से कतारों में संतानों का दल निकलने लगा। धीर गम्भीर चाल से कदम रखते

हुए, ऊँचे स्वर से हरिनाम कहते हुए, वे उस अँधेरी रात में नगर की ओर चले। वस्त्रों का मर्मर-शब्द, अस्त्रों की झनझनाहट, कण्ठों का अस्फुट निनाद, रह रहकर उच्च स्वर से हरिनाम। धीरता से, गम्भीरता से, रोषपूर्वक, तेज से, उस सन्तान-वाहिनी ने नगर में आकर नगर को भयभीत कर दिया। एकाएक यह वज्रपात देखकर कौन कहाँ भागा, कुछ नहीं कहा जा सकता। नगर के रक्षक कुछ न कर सके।

इधर संतान पहले शाही कैदखाने में गये। जेल तोड़कर रक्षक को मार डाला और सत्यानन्द तथा महेंद्र को मुक्त करके सिर पर लेकर नाचने लगे। तब बार-बार ईश्वर नाम की गूंज उठने लगी। सत्यानंद और महेंद्र को मुक्त करके ही उन्होंने जहाँ कहीं मुसलमान का घर देखा, उसको जला देते हैं। तब सत्यानंद ने कहा—'लौट चलो, बेकार किसी का नुकसान करने से कोई फायदा नहीं होगा।' संतानों के इस अत्याचार का संवाद पाकर देश के अधिकारियों ने उनके दमन के लिए परगना-सिपाहियों का एक दल भेजा। उनके पास केवल बन्दूक ही नहीं, एक तोप भी साथ में थी। उनके आने की सूचना पाकर संतान आनंद कानन से निकलकर युद्ध के लिए बढ़े। तुरन्त लाठी, बल्लम, तलवार और बीस-पचीस बन्दूकें तोप का मुकाबला क्या करेंगी, संतानों का दल परास्त होकर भागने लगा।

दूसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

शांति की कम आयु में, निरे बचपन में, माता का वियोग हुआ था। जिन उपादानों से शांति का चरित्र तैयार हुआ है, यह उनमें एक प्रधान है। उसके पिता उपाध्यापक ब्राह्मण थे। उनके घर में कोई और भी नहीं थी।

शांति के पिता जब पाठशाला में पढ़ाते थे, शांति उनके पास जाकर बैठी रहती थी। पाठशाला में कुछ बालक रहते थे, शांति दूसरे समय उनके पास बैठकर खेलती थी, उनकी गोद में तथा पीठ पर चढ़ती थी, वे भी शांति का सत्कार करते थे।

बचपन से सदा लड़कों के सङ्ग रहने का पहला नतीजा यह निकला कि शांति ने लड़की की तरह धोती पहनना नहीं सीखा, या सीखकर छोड़ दिया। लड़के की तरह कोंछीदार धोती पहनना आरम्भ किया। उस समय कोई लड़की की जैसी धोती पहना देता था तो वह खोल डालती थी, फिर कोंछीदार पहनती थी। पाठशाला के लड़के चोटी का जूड़ा नहीं बाँधते, इसलिए शांति भी कभी जूड़ा नहीं बाँधती थी। उसका जूड़ा बाँधे भी कौन! पाठशाला के लड़के लकड़ी के कंघे से उसके बाल सँवार देते थे, घुँघराले बाल उसकी पीठ पर, कंधों पर, बाहों पर और गालों पर झूम रहे थे। लड़के चंदन की बिन्दी लगाते थे और दूसरी जगह चंदन लगाते थे, शांति भी बिन्दी लगाती थी और दूसरी जगह चंदन लगाती थी, गले में जनेऊ पहनने को नहीं मिलता था, इसलिए शांति बहुत रोती थी। लेकिन संध्या-प्रार्थना के समय छात्रों के पास बैठकर उनका अनुकरण

करते वाक्य नहीं आती थी। अध्यापक के न होने पर छात्र संस्कृत के अश्लील उदाहरण देते हुए दो-एक शृङ्गारात्मक किस्से-कहानियाँ कहते थे, तोते की तरह शांति ने वह भी सब सीखा—तोते की तरह, उनका मतलब क्या है, कुछ भी नहीं समझती थी।

दूसरा नतीजा यह हुआ कि शांति जब बड़ी हुई, तब लड़के जो कुछ पढ़ते थे, उनके साथ-साथ वह भी सीखने लगी। व्याकरण का कुछ भी नहीं आता, लेकिन भट्टि, रघु, कुमार, नैषधादि के श्लोक व्याख्या-सहित कण्ठस्थ करने लगी। देख-सुनकर शांति के पिता ने यद् भविष्यति तद् भविष्यति कहकर शांति को मुग्धबोध पढ़ाना शुरू किया। शांति बहुत तेजी से सीखने लगी। अध्यापक आश्चर्य-चकित रह गये। व्याकरण के साथ दो-एक पुस्तक साहित्य की पढ़ाई। इसके बाद सब खेल समाप्त हो गया, पिता परलोकवासी हुए।

उस समय शांति बिना आश्रय हो गई। पाठशाला की छुट्टी हो गई। छात्र चले गये। लेकिन शांति को वे लोग स्नेह करते थे, शांति को छोड़कर नहीं जा सके, दया करके एक छात्र उसे अपने यहाँ ले गया। बाद को संतान-सम्प्रदाय में गये और जीवानंद नाम ग्रहण किया। हम इन्हें जीवानंद ही कहते रहेंगे। तब जीवानंद के माता-पिता जीवित थे। उनके पास जीवानंद ने कन्या का सविशेष परिचय दिया। माता-पिता ने पूछा—'अब इस दूसरे की कन्या का भार कौन लेगा?'

जीवानंद ने कहा—'मैं ले आया हूँ, मैं ही लूँगा।'

माता-पिता ने कहा—'अच्छा है।'

जीवानंद अविवाहित थे, शांति की विवाह की अवस्था हो गई थी। जीवानंद ने उससे विवाह कर लिया।

विवाह के पश्चात् सब लोग पछताने लगे। सब समझ गये कि काम अच्छा नहीं हुआ। शांति ने किसी प्रकार भी लड़की की तरह धोती नहीं पहनी। किसी तरह भी बाल नहीं बाँधे। वह घर के भीतर नहीं रहती थी। मुहल्ले के बालकों के साथ खेलती थी। जीवानन्द के घर के पास ही जङ्गल है, शांति अकेली जङ्गल में जाकर, कहाँ मोर है, कहाँ हिरन

हैं, कहाँ दुर्लभ फूल-फल हैं, यह सब ढूँढ़ती फिरती थी। सास-ससुर ने पहले मना किया, फिर भला-बुरा कहा, बाद को मारकर कोठरी में जञ्जीर चढ़ाकर कैद करने लगे। दबाव से शान्ति की तबीअत बहुत उचटी। एक दिन किवाड़ खुले पाकर किसी से कुछ कहे सुने बिना शान्ति घर से भाग गई।

जङ्गल में फूल तोड़-तोड़कर, कपड़ा रँगकर, शान्ति बालक-संन्यासी बनी, उस समय बङ्गाल भर में दल के दल संन्यासी घूमते थे। शान्ति भीख माँगती खाती हुई जगन्नाथपुरी के रास्ते जाकर खड़ी हुई। कुछ ही देर बाद उस रास्ते में संन्यासियों का एक दल दिखाई दिया। शान्ति उनके साथ हो ली।

उस समय के संन्यासी अब के संन्यासियों की तरह नहीं थे। वे लोग दल-बद्ध, सुशिक्षित, बलिष्ठ, युद्ध-विशारद और दूसरे-दूसरे गुणों से युक्त थे। वे प्रायः राजा के विद्रोही थे, खजाना लूटकर जीवन व्यतीत करते थे। बलवान् लड़का मिलने पर वे चुरा लेते थे। उन्हें सुशिक्षित करके अपने दल में मिला लेते थे। इसलिए उन्हें लड़के चुरानेवाले कहते थे।

शान्ति बालक-संन्यासी के वेश में इन्हीं के एक दल से मिली। वे लोग पहले उसके कोमल अंग देखकर ग्रहण करने को राजी नहीं हुए, लेकिन शांति की बुद्धि की प्रखरता, चतुरता और कार्यदक्षता देखकर आदरपूर्वक दल में ले लिया। शांति उनके दल में रहकर व्यायाम करती थी और अस्त्र चलाना सीखती थी। इस तरह परिश्रम करने वाली और सहनशील हो गई। उनके साथ रहकर अनेक देशों का भ्रमण किया, लड़ाइयाँ देखीं और अस्त्र विद्या सीख ली।

धीरे-धीरे उसके यौवन के लक्षण दिखाई दिये। बहुत से संन्यासियों ने जाना कि वह छद्मवेशिनी स्त्री है। परन्तु संन्यासी प्रायः जितेन्द्रिय होते हैं, कोई कुछ नहीं बोला।

संन्यासियों के दल में बहुत से पण्डित थे। शांति संस्कृत में कुछ गति प्राप्त कर चुकी है, देखकर एक पण्डित संन्यासी ने उसे पढ़ाना आरम्भ किया। प्रायः संन्यासी जितेन्द्रिय होते हैं, कहा है; लेकिन सब

नहीं होते। ये पण्डित भी नहीं थे, अथवा ये शान्ति के नये यौवन के विकास से उत्पन्न हुए लावण्य से मुग्ध होकर इन्द्रिय से बार-बार पीड़ित होने लगे। शिष्या को आदिरसाश्रित काव्य पढ़ाना आरम्भ किया। आदिरसाश्रित काव्यों की न सुनाई जाने वाली व्याख्याएँ सुनाने लगे। इससे शांति का अपकार न होकर कुछ उपकार हुआ। लज्जा किसे कहते हैं, शांति नहीं जानती, अब स्त्री-स्वभाव-सुलभ लज्जा आप आकर उपस्थित हुई। पौरुष-चरित्र पर निर्मल स्त्री-चरित्र की अपूर्व प्रभा आकर पड़ी। शांति के गुणों को विकसित करने लगी। शांति ने पढ़ना छोड़ दिया।

शिकारी जिस प्रकार हिरनी की तरफ दौड़ता है, शान्ति के अध्यापक शान्ति को देखते ही उसकी तरफ उसी प्रकार दौड़ने लगे। लेकिन व्यायाम आदि से शान्ति ने पुरुष का भी दुर्लभ बल प्राप्त किया था। अध्यापक जब पास आते थे, तब झापड़ और घूसों से उनकी पूजा करती थी—झापड़ और घूसे मामूली नहीं थे। एक संन्यासी महाराज ने एकान्त में पाकर बड़ी मजबूती से शान्ति का हाथ पकड़ा, शान्ति छुड़ा नहीं सकी। लेकिन संन्यासी के दुर्भाग्य से वह शान्ति का बायाँ हाथ था, दाहिने हाथ से शान्ति ने उनके सर पर ऐसा घूसा मारा कि संन्यासी बेहोश होकर गिर गये। शान्ति संन्यासी-दल त्यागकर चली गई।

शान्ति निडर है। अकेली अपने गाँव की खोज करती चली गई। साहस और बाहुबल के भरोसे निर्विघ्नता से चली। भीख माँगकर अथवा जङ्गली फलों से पेट भरती हुई और बहुत सी हाथा-पाइयों में जीतकर ससुराल पहुँची। मालूम हुआ कि ससुर परलोक सिधार गये हैं, जाति के चले जाने के भय से सास ने उसे स्थान नहीं दिया। शान्ति फिर चली गई।

जीवानन्द घर में थे। वे शान्ति के पीछे चले। रास्ते में शान्ति को रोककर पूछा—'तुम मेरा घर क्यों छोड़ गई थीं? इतने दिन थीं कहाँ?'

शान्ति ने सब सच-सच कहा। जीवानन्द सब सच-झूठ समझ सकते थे। उन्होंने शान्ति की बात पर विश्वास कर लिया।

अप्सराओं की भ्रू-विलास युक्त कटाक्ष की ज्योति लेकर बड़े यत्न से तैयार सम्मोहन शर को कामदेव विवाहित दम्पति के प्रति छोड़कर बेकार का खर्च नहीं करते। अङ्गरेज पूर्णमासी की रात को राजमार्ग पर गैस जलाते हैं, बङ्गाली तेल लगे सर पर तेल डालते हैं, मनुष्यों की बात दूर रही, चन्द्रदेव सूर्यदेव के आने के बाद भी कभी-कभी आकाश में उगे रहते हैं, इन्द्र समुद्र पर जल बरसाते हैं, जिस सन्दूक में रुपये भरे हैं, कुबेर उसी सन्दूक के लिए रुपये ले जाते हैं, यम ने प्रायः जिसके सब आदमियों को ग्रहण किया है, उसी के एक शेष को ले जाते हैं, केवल रतिपति का ऐसी बुद्धिहीनता का काम नहीं दिखाई देता। जहाँ गँठबन्धन हुआ है वहाँ वे और परिश्रम नहीं करते, प्रजापति पर सब भार सौंपकर, जिसके हृदय का रक्त पी पायँगे, उसकी तलाश में जाते हैं, लेकिन आज शायद पुष्पधन्वा का और कोई काम नहीं था, एकाएक दो पुष्पबाणों का उन्होंने अपव्यय किया। एक ने आकर जीवानन्द का हृदय पार किया, और एक दूसरे ने आकर शान्ति के हृदय में चुभकर समझाया कि वह हृदय स्त्री का हृदय है—बड़ी कोमल वस्तु। नये मेघ से मुक्त पहली वर्षा से धुली कली की तरह सहसा खिलकर शान्ति ने उत्फुल्ल नयनों से जीवानन्द के मुख की तरफ ताका।

जीवानन्द ने कहा—'मैं तुम्हें न छोड़ूँगा। जब तक मैं लौट न आऊँ, तब तक तुम यहीं खड़ी रहो।'

शान्ति ने पूछा—'तुम लौटकर आओगे तो......!'

जीवानन्द कोई उत्तर न देकर, किसी ओर बिना देखे, उस रास्ते के किनारे के नारियलों के कुञ्ज की छाँह में, शान्ति के ओठों पर ओठ लगा कर, अमृत पान किया सोचकर, चल दिये।

माँ को समझाकर जीवानन्द वहाँ से बिदा हो आये। भैरवीपुर में हाल ही में उनकी बहिन निमाई का विवाह हुआ था, बहनोई के साथ जीवानन्द का कुछ प्रेम था, जीवानन्द शान्ति को लेकर वहीं गये। बहनोई ने थोड़ी-सी जगह दी। जीवानन्द ने उस पर एक कुटी बनवाई, फिर शान्ति को लेकर वहीं सुखपूर्वक रहने लगे। पति के साथ रहते हुए शांति

के चरित्र का पौरुष विलीन या प्रच्छन्न हो आया। रमणी के रमणी-चरित्र का नित्य नवोन्मेष होने लगा। सुख के स्वप्न की भाँति उनका जीवन पार हो रहा था, लेकिन सहसा वह सुख का स्वप्न टूटा। जीवानन्द सत्यानन्द के हाथ पड़कर सन्तान-धर्म ग्रहण कर शांति को त्याग कर चले गये। त्याग के बाद उनकी पहली भेंट निमाई की चालाकी से हुई। यही पहले खण्ड के किसी परिच्छेद में लिखा गया है।

दूसरा परिच्छेद

जीवानन्द जब चले गये तब शांति निमाई के चबूतरे पर जाकर बैठी। निमाई कन्या को गोद में लिये हुए उनके पास आकर बैठी। शांति के नेत्रों में अब आँसू नहीं, शांति ने नेत्र पोंछकर मुँह प्रफुल्ल कर लिया है, मन्द-मन्द मुस्करा रही है। कुछ गम्भीर है, कुछ चिन्तित और अनमनी। निमाई ने समझकर कहा—फिर भी भेंट तो हुई।

शांति ने कोई उत्तर नहीं दिया, मौन रही। निमाई ने देखा कि शांति मन की बात कुछ नहीं बतायेगी। शांति को मन की बात बताना पसन्द नहीं, यह निमाई जानती थी, इसलिए निमाई ने कोशिश करके दूसरी बात उठाकर कहा—'देखो तो बहू, कैसी लड़की है।'

शांति ने पूछा—'लड़की कहाँ पर मिली? तेरे लड़की कब हुई!'

निमाई—'तुम्हारी मौत हो, तुम्हें यम के दूत उठा ले जायँ, यह दादा की लड़की है।'

निमाई ने शांति को चिढ़ाने के लिए यह बात नहीं कही। 'दादा की लड़की है' यानी दादा से वह लड़की मिली है। शांति यह नहीं समझी। सोचा, निमाई शायद व्यङ्ग करने की चेष्टा कर रही है। इसलिए शांति ने उत्तर दिया—'मैंने लड़की के बाप की बात नहीं पूछी, माँ की बात पूछी है।'

उचित शास्ति पाकर अप्रतिभ होकर निमाई ने कहा—किस की लड़की है, मैं क्या जानूँ, दादा कहीं से उठा लाये हैं, सो पूछने का तो

मौका ही नहीं मिला। लेकिन मन्वन्तर के दिन हैं, कितने आदमी लड़के-बच्चे रास्ता-घाट पर डाल जाते हैं, हमारे ही पास कितने लड़की-लड़के बेचने आये थे, लेकिन दूसरे के लड़की-लड़के कौन मोल ले ?' फिर आँखों में उसी प्रकार आँसू भर आये—निमी आँसू पोंछकर फिर कहने लगी—'लड़की बड़ी सुन्दर है, गोल-मटोल, चाँद जैसी, देखकर दादा से माँग लाई हूँ।'

इसके बाद शांति बहुत देर तक निमाई से तरह-तरह की बातचीत करती रही। कुछ देर में निमाई के पति घर लौट आये, देखकर शांति उठकर अपनी कुटी में गई। कुटी में जाकर द्वार बन्द करके चूल्हे से कुछ आग निकालकर रख दी, बाकी राख पर अपने लिए जो भात पकाकर रक्खा था, वह फेंक दिया। इसके बाद खड़ी-खड़ी बहुत देर तक सोचकर अपने आप बोली—'इतने दिनों तक जो कुछ सोच रक्खा था, आज वह करूँगी। जिस आशा से इतने दिनों तक नहीं किया, वह सफल हुई है। सफल या निष्फल—निष्फल। जो सङ्कल्प किया है, वह करूँगी। एक बार के लिए जो प्रायश्चित है, सौ बार के लिए भी वही है।'

यह सोचकर शांति ने भात चूल्हे में झोंक दिया। जङ्गल से फल तोड़ लाई। अन्न की जगह फल खाये। इसके बाद उसकी ढाके-वाली जिस साड़ी पर निमाईमणि की दृष्टि लगी थी, उसे निकाल कर उसकी किनारी फाड़ डाली। साड़ी का जो हिस्सा बचा, उसे गेरू से अच्छी तरह रँगा। कपड़ा रँगने और सुखाने में सन्ध्या हो गई। सन्ध्या होने पर द्वार बन्द करके बड़े अचरज के मामले में शान्ति लगी। सर के रूखे एड़ी तक आते हुए बालों का कुछ हिस्सा कैंची से काटकर अलग धर दिया। शेष जो सर पर रहा, उसे बिनकर जटा तैयार की। रूखे बाल अपूर्व विन्यासवाले जटा-भार में परिणत हुए। इसके बाद गेरुए वस्त्र का आधा फाड़कर शान्ति ने अञ्चल बनाकर पहना, शेष आधे से छाती बाँधी। घर में एक छोटा-सा शीशा था, बहुत दिनों के बाद शान्ति ने उसे बाहर निकाला। निकालकर शीशे में अपना वेष देखा। तब शीशा फेंककर जो बाल कटे पड़े थे, उन्हें लेकर दाढ़ी-मूँछें

बनाई, लेकिन पहन नहीं सकी। सोचा—राम-राम! यह भी होता! वे दिन, वह वक्त क्या अब है? लेकिन बुड्ढे को पाठ सिखाने के लिए यह सब रख लेना अच्छा है।' यह सोचकर शांति ने दाढ़ी-मूँछें कपड़े में बाँध रक्खीं। इसके बाद घर से एक बड़ा मृग-चर्म निकालकर गले में गाँठ लगाकर गले से बाँध तक शरीर को ढका। इस प्रकार सजकर वह नवीन संन्यासी घर के भीतर धीरे-धीरे चारों ओर देखने लगी। रात के दो पहर बीत जाने पर शांति उसी सन्यासी वेश में द्वार खोलकर अँधेरे में अकेली घने जङ्गल में दाखिल हुई। वन देवियों को उस रात्रि में वन में अपूर्व गीतध्वनि सुनाई दी।

[१]

कहाँ चले अश्व पर चढ़कर!
हमें न रोको, हम चले समर।
हर हर कह समर में रँगे;
रण-तरङ्ग में हम कूदेंगे;
किसके हो तुम कौन तुम्हारा,
क्यों देते हो हमें सहारा!
नारी की अब चाह नहीं है,
गाओ रण के गीत उमड़कर।

[२]

पैरों पड़ूँ तुम्हारे प्यारे,
रहो सदा तुम मुझको घेरे।
बजता है क्या रण का बाजा,
नाच रहा तुरङ्ग यह साजा;
मेरा मन उड़ रहा देखकर,
मैं न रहूँगा, कभी भी घर पर;
नारी की अब चाह नहीं है,
गाओ गीत उमंग में भरकर॥

तीसरा परिच्छेद

अगले दिन आनन्दमठ के निस्तब्ध कमरे में बैठे हुए भग्नोत्साह दो-तीन सन्तान नायक बातचीत कर रहे थे। जीवानन्द ने सत्यानन्द से पूछा—'महाराज, देवता हमारे ऊपर ऐसे नाराज क्यों हैं? किस दोष से हम लोग मुसलमानों से हार गये?'

सत्यानन्द ने कहा—'देवता नाराज नहीं, लड़ाई में जय और पराजय दोनों हैं, उस दिन हम लोग विजयी हुए थे, आज पराजित हुए हैं, अन्त में जय ही जय है। हमें पूरे तौर से भरोसा होता है कि जिन्होंने इतने दिनों तक हम पर दया की है, वे शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारीवनमाली फिर दया करेंगे। उनके चरण छूकर जिस महाव्रत में हम लोग व्रती हुए हैं, अवश्य ही वह व्रत हमें साधना होगा। विमुख होने पर हम लोग महानरक में पड़ेंगे। भावी मङ्गल के सम्बन्ध में मुझे सन्देह नहीं है। लेकिन जिस प्रकार दैव की कृपा के बिना कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता उसी प्रकार पुरुषार्थ भी चाहिए। हम लोग हारे, इसका कारण यह है कि हम लोगों के पास हथियार नहीं है। गोली-गोले, तोप और बन्दूकों के मुकाबले लाठी, सोंटा और बल्लमों से क्या होगा? हमारे पुरुषार्थ न था; इसीलिए हम हारे। अब हमारा कर्तव्य है कि हम ऐसा करें कि हमको भी उन अस्त्रों का अभाव न रहे।'

जीवा०—'यह बड़ा कठिन मुकाम है।'

सत्या०—'कठिन मुकाम है जीवानन्द? सन्तान होकर ऐसी बात तुम मुख पर लाये? सन्तान के लिए कठिन मुकाम है क्या?'

जीवा०—'किस तरह ये हथियार हम इकट्ठा करें आज्ञा दीजिए?'

सत्या०—'इकट्ठा करने के लिए आज रात को तीर्थ यात्रा करूँगा। जब तक लौट न आऊँ, तब तक तुम लोग किसी उत्तरदायी काम में हाथ न लगाना, लेकिन सन्तानों की एकता बचाये रखना। उनके भोजन

वस्त्र की कमी पूरी करते रहना और माता की युद्ध में विजय होने के लिए अर्थवाला कोष भरते रहना। यह भार तुम दो आदमियों के जिम्मे रहा।'

भवानन्द ने कहा—'तीर्थ यात्रा करते हुए यह सब कैसे इकठा कीजिएगा? गोली गोले, तोप-बन्दूक खरीदकर भेजने में बड़ा हल्ला मच सकता है और इतनी तोप-बन्दूकें मिलेंगी भी कहाँ? बेचेगा भी कौन? लायेगा भी कौन?'

सत्या०—'खरीदकर हम काम नहीं चला सकेंगे। मैं कारीगर भेज दूँगा, यहीं तैयार करवाना होगा।'

जीवा०—'यह क्या? इसी आनन्दमठ के भीतर?'

सत्या०—'ऐसा भी कहीं होता है? इसका उपाय मैं बहुत दिनों से सोचता आ रहा हूँ। ईश्वर ने आज इसका सुयोग कर दिया है। तुम लोग कह रहे थे, भगवान् अप्रसन्न हैं, मैं देखता हूँ, वे प्रसन्न हैं।'

भवा०—'कारखाना कहाँ बनेगा?'

सत्या०—'पदचिह्न में।'

जीवा०—'वह क्या? वहाँ किस प्रकार प्रकार होगा?'

सत्या०—'नहीं तो फिर किस लिए मैंने महेंद्रसिंह को यह व्रत ग्रहण करने के लिए इतना दीन किया?'

भवा०—'महेंद्र ने क्या व्रत ग्रहण किया?'

सत्या०—'अभी व्रत ग्रहण नहीं किया। आज रात्रि को उसे दीक्षित करूँगा।'

जीवा०—'महेंद्रसिंह को व्रत ग्रहण कराने के लिए कौन सी दीनता उसकी की गई, मैंने नहीं देखी। उसकी स्त्री कन्या की कैसी दशा हुई, कहाँ वे रक्खी गईं? नदी के किनारे एक लड़की पाकर मैं उसे अपनी बहिन के यहाँ रख आया हूँ। लड़की के पास एक सुन्दरी स्त्री मरी पड़ी थी। वे तो महेन्द्र की स्त्री कन्या नहीं? मेरा ऐसा ही विचार हुआ था।'

सत्यानन्द—'वही महेंद्र की स्त्री कन्या है।'

भवानन्द चौंक पड़े। तब वे समझे कि जिस स्त्री को ओषधि के बल से उन्होंने फिर से जिलाया है, वही महेंद्र की स्त्री कल्याणी है, लेकिन इस समय कोई बात खोलना उन्होंने जरूरी नहीं समझा।

जीवानन्द ने पूछा—'महेंद्र की स्त्री किस तरह मरी?'

सत्या०—'विष खाकर।'

जीवा०—'क्यों विष खाया?'

सत्या०—भगवान् ने उसे जान देने का स्वप्न में आदेश दिया था।

भवा०—'स्वप्न का वह आदेश क्या सन्तानों के कार्योद्धार के लिए हुआ था?'

सत्या०—महेंद्र से सुना तो ऐसा ही है। अब सन्ध्या मुहूर्त्त आ गया है, मैं सायंकृत्य करने चला। इसके पश्चात् नये सन्तानों को दीक्षित करूँगा।'

भवा०—'सन्तानों को? क्या महेंद्र के अलावा कोई और भी आप का शिष्य होने की स्पर्धा रखता है?'

सत्यानन्द—'एक और नया आदमी है। पहले कभी मैंने उसे नहीं देखा। आज नये-नये मेरे पास आया था। वह बहुत ही तरुण नवयुवक है। मैं उसके आकार, इङ्गित और बातचीत से बहुत खुश हुआ हूँ। वह खालिस सोना है, ऐसा मालूम दिया। उसे सन्तान का काम सिखाने का भार जीवानन्द पर रहा। क्योंकि जीवानन्द दूसरे का चित्त खींचने में बड़े दक्ष हैं। मैं चला; तुम लोगों के लिए एक उपदेश शेष रह गया है। अच्छी तरह ध्यान देकर सुनो।'

तब दोनों ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'आज्ञा कीजिए।'

सत्यानन्द ने कहा—'तुम दोनों ने यदि कोई अपराध किया हो या मेरे लौट आने के पहले तक करो, तो बिना मेरे आये उसका प्रायश्चित्त जरूर करना होगा।'

इतना कहकर सत्यानन्द अपनी जगह पर चले गये। भवानन्द और जीवानन्द दोनों एक दूसरे के मुँह की तरफ ताकते रह गये।

भवा०—'इसमें क्या दोष है? यह तो निषिद्ध नहीं। क्या ब्राह्मणी से भेंट कर आये हो?'

जीवा०—मालूम तो देता है, गुरुदेव का ऐसा ही विचार है।'

चौथा परिच्छेद

संध्या के कामों से निवृत्त होकर महेन्द्र को बुलाकर सत्यानन्द ने कहा—'तुम्हारी लड़की जीवित है।'

महेंद्र—'कहाँ महाराज?'

सत्या०—'तुम मुझे महाराज क्यों कहते हो?'

महेंद्र—'सब कहते हैं, इसलिए! मठ के अधिकारियों को राजा के नाम से सम्बोधन करना चाहिए। मेरी लड़की कहाँ है महाराज?'

सत्या०—'यह सुनने के पहले एक बात का सच-सच उत्तर दो। तुम सन्तान-धर्म ग्रहण करोगे?'

महेन्द्र—'अपने हृदय में मैंने ग्रहण करने का निश्चय किया है।'

सत्या०—'तो लड़की कहाँ है, यह जानना न चाहो।'

महेंद्र—'क्यों महाराज?'

सत्यानन्द—'जो इस व्रत को ग्रहण करता है, उसे स्त्री, पुत्र, कन्या, स्वजन किसी से भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। स्त्री, पुत्र, कन्या का मुँह देखने पर भी प्रायश्चित है। जब तक सन्तानों की मनोकामना पूर्ण नहीं होती, तब तक तुम कन्या का मुँह नहीं देख सकोगे। इसलिए अगर सन्तान-धर्म ग्रहण स्थिर कर लिया हो, तो कन्या की खोज लेकर क्या करोगे, देख ता सकोगे नहीं।'

महेंद्र—'इतना कठिन नियम क्यों है महाराज?'

सत्यानन्द—'सन्तानों का काम बड़ा कठिन काम है। जो सर्वत्यागी है, उसके बिना दूसरा कोई इस काम के लायक नहीं। माया की डोर से उसका चित्त बँधा है, वह डोर से बँधी पतङ्ग की तरह—बिना हवा के—मिट्टी छोड़कर आकाश पर नहीं उड़ सकता।'

महेंद्र—'महाराज, बात ठीक तरह नहीं समझ पाया। जो स्त्री-

पुत्र का मुँह देखता है, वह क्या किसी बड़े काम का अधिकारी नहीं ?'

सत्यानन्द—'पुत्र-कन्या के मुँह देखने पर हम लोग देवता का काम भूल जाते हैं। सन्तान-धर्म का नियम यह है कि जिस दिन प्रयोजन होगा, उसी दिन सन्तान को जान की बाजी लगानी पड़ेगी. तुम्हारी कन्या का मुँह तुम्हें याद आया तो क्या तुम उसे छोड़कर जान पर खेल सकोगे ?'

महेंद्र—'तो क्या न देखने पर ही कन्या को भूल जाऊँगा ?'

सत्यानन्द—'न भूल सको तो यह व्रत ग्रहण न करना।'

महेंद्र—'क्या सभी सन्तानों ने पुत्र-कन्या को भूलकर व्रत ग्रहण किया है ? तो सन्तान संख्या में बहुत कम हैं।'

सत्यानन्द—'सन्तान दो प्रकार के हैं, दीक्षित और अदीक्षित। जो अदीक्षित हैं, वे संसारी हैं या भिखारी। वे केवल लड़ाई के वक्त आते हैं, लूट का हिस्सा या दूसरा इनाम पाकर चले जाते हैं, जो दीक्षित हैं वे सर्व त्यागी हैं। वे सम्प्रदाय के कर्त्ता हैं। तुमसे अदीक्षित सन्तान होने का अनुरोध हम नहीं करते। लड़ाई के वक्त के लिए लाठी-बल्लम चलाने वाले बहुतेरे हैं। दीक्षित हुए बिना तुम सम्प्रदाय के किसी भी बड़े काम के अधिकार नहीं हो पाओगे।'

महेंद्र—'दीक्षा क्या है ? दीक्षित क्यों होना पड़ेगा ? मैंने तो इससे पहले ही मन्त्र ग्रहण कर लिया है।'

सत्यानन्द—'उस मन्त्र को छोड़ना पड़ेगा। मेरे पास फिर से नया मन्त्र लेना होगा।'

महेंद्र—'मन्त्र का त्याग किस प्रकार करूँगा ?'

सत्यानन्द—'मैं यह पद्धति बताये देता हूँ।'

महेंद्र—'नया मन्त्र किस लिए लेना होगा ?'

सत्यानन्द—'संतान वैष्णव हैं।'

महेंद्र—'यह समझ में नहीं आता, संतान वैष्णव क्यों हैं ? वैष्णवों का तो अहिंसा ही परम धर्म है।'

सत्या०—'वे चैतन्यदेव के वैष्णव हैं। नास्तिक बौद्ध-धर्म के अनुकरण में जो वैष्णवता उत्पन्न हुई थी, उसमें उसी के लक्षण हैं। सच्चे वैष्णव

धर्म का लक्षण है दुष्टों का दमन और शिष्टों का उद्धार। क्योंकि विष्णु ही संसार के पालनेवाले हैं। दस बार शरीर धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया है। केशी, हिरण्यकशिपु, मधुकैटभ, मुर, नरक आदि दैत्यों को. रावण आदि राक्षसों को कस, शिशुपाल आदि राजों को उन्होंने ही लड़ाई में मारा था। वही जेता, जय दाता पृथ्वी के उद्धारकर्ता और सन्तानों के इष्ट देवता हैं, चैतन्यदेव का वैष्णव-धर्म सच्चा वैष्णव-धर्म नहीं,—वह केवल आधा धर्म है। चैतन्यदेव के विष्णु प्रेममय हैं, लेकिन भगवान केवल प्रेममय नहीं, वे अनन्त शक्तिमय भी हैं। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय हैं, सन्तानों के विष्णु केवल शक्तिमय। हम दोनों वैष्णव हैं, लेकिन दोनों आधे वैष्णव हैं। बात समझ गये न !'

महेन्द्र—'नहीं, यह कैसी नई बात सुन रहा हूँ। कासिम-बाजार में एक पादरी से मेरी भेंट हुई थी, उसने ऐसी ही बातें सुनाई थीं, अर्थात् ईश्वर प्रेममय हैं, तुम लोग ईसा से प्रेम करो। आपकी बात भी उसी प्रकार की है।'

सत्यानन्द—'जिस प्रकार की बात हमारे चौदह पुश्त से लोग समझते आये हैं, वैसी ही बात मैं तुम्हें समझा रहा हूँ। ईश्वर त्रिगुणात्मक हैं, यह तो तुम सुन चुके होगे ?'

महेन्द्र—'हाँ, सत्य, रजः, तमः—ये तीन गुण हैं।'

सत्यानन्द—'ठीक इन तीनों गुणों की अलग-अलग उपासनाएँ हैं। सत्वगुण से उनके दया-दाक्षिण्य आदि की उत्पत्ति है। उनकी उपासना भक्ति से करोगे। चैतन्य का सम्प्रदाय यह करता है। रजोगुण से उनकी शक्ति की उत्पत्ति है, इसकी उपासना युद्ध से, देवद्वेषियों के निधन से है, हम लोग यह करते हैं। और तमोगुण से भगवान् ने चतुर्भुज आदि रूप अपनी इच्छा से धारण किये हैं। चन्दन-माला आदि चढ़ाकर उस गुण की पूजा की जाती है, साधारण लोग वैसा करते हैं। अब समझ गये ?'

महेन्द्र—'समझ गया। तो फिर सन्तान लोग केवल उपासकों का सम्प्रदाय है ?

सत्यानन्द—हाँ, हम राज्य नहीं चाहते, केवल मुसलमान ईश्वर से द्वेष रखते हैं, इस कारण वंश सहित उनका नाश करना चाहते हैं।

पाँचवाँ परिच्छेद

सत्यानन्द बातचीत खत्म करके महेन्द्र के साथ मठ के देवालय में, जहाँ वह अपूर्व शोभावाली बड़े आकर की चतुर्भुज मूर्ति विराज रही है, गये। वहाँ तक अपूर्व शोभा थी, चाँदी सोने और रत्नों से जड़ित बहुविध दीपों से मन्दिर प्रकाशित हो रहा था। फूलों की राशियाँ सुशोभित होकर मन्दिर को सुगन्धित कर रही थीं। मन्दिर में एक आदमी और बैठा हुआ मधुर स्वर से 'हरे मुरारे' कह रहा था। सत्यानन्द के मन्दिर में जाते ही, उसने उठकर प्रणाम किया। ब्रह्मचारी ने पूछा—'तुम दीक्षित होना चाहते हो?'

उसने कहा—मुझ पर कृपा दीजिए।

तब उसे और महेंद्र को सम्बोधन करके सत्यानन्द ने कहा—तुम नियमानुसार नहाये हुए, संयत और उपवास तो किये हुए होगे?

'जी हाँ।'

सत्या०—तुम लोग भगवान् के सामने प्रतिज्ञा करो, सन्तानधर्म के नियम का पालन करोगे?

दोनों बोल पड़े—पालेंगे।

सत्या०—जितने दिनों तक माता का उद्धार न हो, उतने दिनों के लिए गृहधर्म छोड़ना पड़ेगा?

दोनों ने कहा—छोड़ेंगे।

सत्या०—माता-पिता को त्यागना होगा?

दोनों—त्याग देंगे।

सत्या०—भाई बहिन?

दोनों—त्याग देंगे।

सत्या०—स्त्री-पुत्र?

दोनों—त्याग देंगे।

सत्यानन्द—आत्मीय-स्वजन ? नौकर-नौकरानी ?

दोनों—सब कुछ त्यागा।

सत्यानन्द—धन-सम्पद्-भोग ?

दोनों—सब त्याग दिया।

सत्या०—इन्द्रियों को वश में करोगे ? स्त्री के साथ कभी एक जगह पर नहीं बैठोगे ?

दोनों—नहीं बैठेंगे। इन्द्रियों को वश में करेंगे।

सत्यानन्द—भगवान के सामने प्रतिज्ञा करो, अपने लिए या स्वजन के लिए धन पैदा नहीं करोगे ? जो कुछ पैदा करोगे वह वैष्णव-भण्डार में दे दोगे ?

दोनों—'सब वैष्णव-भण्डार में दे देंगे।

सत्यानन्द—'सन्तान-धर्म के लिए हथियार लेकर लड़ोगे ?'

दोनों—हाँ, लड़ेंगे।'

सत्यानन्द—'लड़ाई में कभी पीठ तो नहीं दिखाओगे ?'

दोनों—'कभी नहीं।'

सत्यानन्द—'अगर प्रतिज्ञा-भङ्ग हुई तो ?'

दोनों—'जलती चिता में बैठकर या विष खाकर प्राण दे देंगे।'

सत्यानन्द—'एक बात और है—जाति। तुम लोग किस जाति के हो ? महेंद्र कायस्थ हैं, तुम किस जाति के हो ?'

दूसरे व्यक्ति ने कहा—'मैं ब्राह्मण-कुमार हूँ।'

सत्यानन्द—'बहुत ठीक। तुम लोग जाति छोड़ सकोगे। सब संतान एक जातीय हैं। महाव्रत में ब्राह्मण-शूद्र-विचार नहीं। तुम लोग क्या चाहते हो ?'

दोनों—'हम वैसा विचार नहीं रक्खेंगे, हम सब एक माँ के संतान हैं।'

सत्यानन्द—'तो तुम लोगों को दीक्षित करूँगा। तुम लोगों ने जो प्रतिज्ञाएँ कीं उन्हें तोड़ना नहीं। मुरारि स्वयम् उसके गवाह हैं। जो रावण, कंस, हिरण्यकशिपु, जरासिन्ध और शिशुपाल आदि के विनाश के कारण

हैं, जो सब के अन्तर के जाननेवाले, सर्वजयी, सर्वशक्तिमान् और सर्वनियन्ता हैं, जो इन्द्र के वज्र और मार्जार के नखों में समानरूप से वास करते हैं, वे प्रतिज्ञा तोड़नेवाले का विनाश करके उसे घोर नरक में भेजेंगे।'

दोनों—'ऐसा ही हो।'

सत्यानन्द—'तुम लोग कहो 'वन्दे मातरम्।'

दोनों ने उस देवालय में मातृस्तोत्र गाया। तब ब्रह्मचारी ने उन्हें विधिपूर्वक दीक्षित किया।

छठवाँ परिच्छेद

पूर्ण दीक्षित कर सत्यानन्द महेंद्र को बहुत ही एकान्त स्थान में ले गये। दोनों के बैठने पर सत्यानन्द कहने लगे—'देखो वत्स, तुमने जो यह महाव्रत ग्रहण किया, इससे भगवान् हम पर अनुकूल हैं, ऐसा समझ में आता है। तुमसे माता का महत् कार्य अनुष्ठित होगा। तुम बलपूर्वक मेरा आदेश सुनो। तुम्हें जीवानन्द और भवानन्द के साथ वन-वन में घूमकर लड़ने के लिए मैं नहीं कहता। तुम पदचिह्न लौट जाओ। अपने स्थान पर रहकर ही तुम्हें संन्यास धर्म पालन करना होगा।'

महेंद्र सुनकर आश्चर्य में आये, उनका मुख उतर गया। ब्रह्मचारी कहने लगे—'इस समय हमारा कोई आश्रय नहीं, ऐसी जगह नहीं कि प्रबल सेना आकर हमें घेरे तो हम द्वार बन्द कर भोजन की सामग्री लेकर दस दिन निर्विघ्न रहें। हमारे कोई गढ़ नहीं। तुम्हारे अट्टालिका है, तुम्हारा गाँव तुम्हारे अधिकार में है। मेरी इच्छा है, वहाँ एक गढ़ तैयार करूँ। बड़ी खाई और चहारदीवारी से पदचिह्न को घेर कर जगह-जगह मार्के बना देने और बाँध तोपें बैठा देने पर अच्छा गढ़ बन सकता है। तुम घर जाकर रहो, क्रमशः दो हजार संतान वहाँ पहुँचेंगे। उनसे गढ़, बाँध, मार्के यह सब बनवाते रहना। तुम वहाँ एक अच्छा लोहे का कमरा बनवाना। वहाँ संतानों का कोश रहेगा। सोने से भरे सन्दूक एक-एक करके तुम्हारे पास भेजवाता रहूँगा। उसी धन से तुम यह सब काम पूरा करोगे और मैं अनेकानेक जगहों से चतुर शिल्पी बुलवा रहा हूँ। उनके आने

पर तुम पदचिह्न में कारखाने खोल दोगे। वहाँ तोप, गोले, बारूद, बन्दूक तैयार कराओगे। इसीलिए तुम्हें घर जाने के लिए आदेश दे रहा हूँ।'

महेंद्र राजी हो गये।

सातवाँ परिच्छेद

महेंद्र सत्यानन्द की पद-धूलि लेकर चले जाने के बाद उनके साथ जो दूसरा शिष्य दीक्षित हुआ था, उसने आकर सत्यानन्द को प्रणाम किया। सत्यानन्द ने आशीर्वाद देकर काले मृगचर्म पर बैठने की आज्ञा दी। अनेक प्रकार की मीठी बातों के पश्चात् पूछा—'क्यों, कृष्ण पर तुम्हारी भक्ति है या नहीं ?'

शिष्य ने कहा—'किस प्रकार बताऊँ ? मैं जिस उपाय को भक्ति समझता हूँ, सम्भव है, वह बगुले की भक्ति हो या अपने को धोखा देना।'

प्रसन्न होकर सत्यानन्द ने कहा—'तुमने बहुत ठीक सोचा है। जिससे भक्ति दिन-दिन प्रगाढ़ हो, वही अनुष्ठान करना। मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारा प्रयत्न सफल होगा। क्योंकि तुम बहुत छोटी अवस्था के हो। बेटा, तुम्हें किस नाम से पुकारें, यह अभी तक नहीं पूछा।'

नये सन्तान ने कहा—'आपकी जैसी इच्छा हो, मैं वैष्णवों का दासानुदास हूँ।'

सत्यानन्द—'तुम्हारी छोटी अवस्था देखकर तुम्हें नवीनानन्द कहने की इच्छा होती है, इसलिए यही नाम तुम रख लो। लेकिन एक बात पूछते हैं, तुम्हारा पहले क्या नाम था ? अगर कहने में कोई बाधा न हो तो भी कहना। हमसे कहने पर किसी दूसरे के कानों में बात नहीं जायगी। सन्तान-धर्म का मर्म यह है जो नहीं कहना हो वह भी गुरु से कहना चाहिए। कहने से कोई नुकसान नहीं होता।'

शिष्य—मेरा नाम शान्तिराम देव शर्मा है।

सत्यानन्द—तुम्हारा नाम शान्तिमणि पापिष्ठा है।

इतना कहकर सत्यानन्द ने शिष्य की गहरी काली डेढ़ हाथ लम्बी दाढ़ी बायें हाथ से लपेटकर झटका दिया। बनावटी दाढ़ी खुलकर गिर

गई। सत्यानन्द ने कहा—छिः! मुझसे धोखेबाजी! और अगर मुझे ही धोखा दोगी तो इस आयु में डेढ़ हाथ की दाढ़ी क्यों? और, दाढ़ी भी छोटी करतीं, तो कण्ठ का स्वर और नेत्रों का चितवन भी क्या छिपा सकतीं? यदि मैं ऐसा मूर्ख ही होता तो क्या इतने कामों में हाथ डालता?

शान्ति तब कुछ देर दोनों नेत्र छिपाकर सर झुकाये बैठी रही। कुछ देर बाद नेत्रों से हथेलियाँ हटाकर बूढ़े के मुँह पर कोमल कटाक्ष कर बोली—प्रभो, मैंने अपराध ही क्या किया है? स्त्री की भुजाओं में क्या कभी शक्ति नहीं होती?

सत्यानन्द—गोष्पद में जैसे जल।

शान्ति—संतानों के बाहुबल की क्या कभी परीक्षा लेते हैं?

सत्यानन्द—लेते हैं।

इतना कहकर सत्यानन्द ने इस्पात का एक धनुष और लोहे का कुछ लम्बा तार लाकर दिया, कहा—इस इस्पात के धनुष में लोहे का यह तार गुण के तौर पर चढ़ाना पड़ता है। दो हाथ का लम्बा गुण है,। गुण चढ़ाते-चढ़ाते धनुष सीधा हो जाता है; जो गुण चढ़ाता है, उसे दूर फेंक देता है। जो गुण चढ़ा सकता है, वही असल में बलवान् है।

धनुष और गुण की अच्छी तरह परीक्षा कर शान्ति ने कहा—क्या सभी संतान इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये हैं?

सत्यानन्द—नहीं, इससे केवल उनका बल समझा गया है।

शांति—क्या कोई इस परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुए?

सत्यानन्द—केवल चार आदमी उत्तीर्ण हुए हैं।

शान्ति—क्या मैं पूछ सकती हूँ, वे कौन-कौन हैं?

सत्यानन्द—मनाही तो कोई नहीं, एक आदमी मैं हूँ।

शान्ति—और?

सत्यानन्द, भवानन्द, ज्ञानानन्द।

शान्ति ने धनुष लिया, तार लिया, सरलता से उसमें गुण चढ़ाकर गुरु के पैरों के पास फेंक दिया।

सत्यानन्द को कुछ आश्चर्य हुआ, कुछ डरे और चुप हो रहे। कुछ

देर बाद कहा—'यह क्या; तुम देवी हो या मानवी ?'

हाथ जोड़कर शान्ति ने कहा—'मैं साधारण प्राणी हूँ, लेकिन हूँ मैं ब्रह्मचारिणी।'

सत्यानन्द—'कैसे ? क्या तुम बाल-विधवा हो ? बाल-विधवाओं में भी इतना बल नहीं होता, क्योंकि वे एक समय भोजन करती हैं।'

शांति—'मैं सुहागिन हूँ।'

सहसा फटे बादलों की धूप की तरह सत्यानन्द के चित्त को उनकी स्मृति ने चमका दिया। उन्होंने कहा—'मुझे याद आया, जीवानन्द की स्त्री का नाम शांति है। क्या तुम जीवानन्द की गृहिणी हो ?'

इस बार जटा के भार से शांति ने मुँह छिपाया, जैसे कमलों पर कुछ सूँड़े हाथियों की पड़ीं। सत्यानन्द कहने लगे—'यह पापाचरण करने क्यों आई ?'

जटाभार पीठ पर करके सर उठाकर बोली—पापाचरण क्या है प्रभो ! पत्नी पति का अनुसरण करे तो वह पापाचरण है ? सन्तान-धर्म-शास्त्र यदि इसे पापाचरण कहे तो संतान-धर्म अधर्म है। मैं उनकी सहधर्मिणी हूँ, वे धर्माचरण कर रहे हैं, मैं उनके साथ धर्माचरण करने आई हूँ।'

शांति की दबङ्ग वाणी सुनकर उन्नत ग्रीवा, स्फीत वक्ष, कम्पित अधर और उज्ज्वल अथवा सजल नेत्र देखकर सत्यानन्द प्रसन्न होकर बोले—'तुम साध्वी हो, परन्तु देखो माँ, पत्नी केवल गृहधर्म में सहधर्मिणी है, वीरधर्म में रमणी कौन है ?'

शांति—'कौन महावीर अपत्नी होकर वीर हुए हैं ? राम, सीता के न होने पर क्या वीर होते ? अर्जुन ने कितने विवाह किये हैं, जरा गिनिए तो, भीम के जितना बल है उतनी पत्नियाँ हैं। कितने कहूँ, आपसे बतलाने की क्या आवश्यकता।'

सत्यानन्द—'बात सत्य है, लेकिन युद्धक्षेत्र में कौन वीर स्त्री लेकर आता है ?'

शांति—'अर्जुन जब यादवी सेना से अन्तरिक्ष में युद्ध कर रहे

थे, कौन उनका रथ चला रही थी ? द्रौपदी साथ न होती तो क्या पाण्डव कुरुक्षेत्र की लड़ाई लड़ सकते ?'

सत्यानन्द—ठीक है, लेकिन साधारण मनुष्यों का मन स्त्रियों में आसक्त है और वह उन्हें काम से अलग करता है। इसीलिए सन्तान-जातिका व्रत ही यह है कि स्त्री-जाति के साथ एक आसन पर संतान नहीं बैठेगा। जीवानंद मेरा दाहना हाथ है। तुम मेरा दाहना हाथ तोड़ने के लिए आई हो ?'

शांति—'मैं आपके दाहिने हाथ का बल बढ़ाने आई हूँ। मैं ब्रह्मचारिणी हूँ, प्रभु के पास ब्रह्मचारिणी ही रहूँगी। मैं केवल धर्माचरण के लिए आई हूँ, पति-दर्शन के लिए नहीं। मैं विरह के दुःख से व्यथित नहीं। पति ने जो धर्म ग्रहण किया है, मैं उसकी हिस्सेदार क्यों न होऊँ ? इसी कारण आई हूँ।'

सत्यानंद—'अच्छी बात है। कुछ दिन तुम्हारी परीक्षा लेकर देख लूँ।'

शांति ने पूछा—'क्या मैं आनंदमठ में रह सकती हूँ ?'

सत्यानंद—'आज और कहाँ जाओगी ?'

शांति—'इसके बाद जाऊँगी।'

सत्यानंद—'माता भवानी की तरह तुम्हारे माथे में अग्नि है, संतान सम्प्रदाय को क्यों जलाओगी ?'

यह कहकर बाद को आशीर्वाद देकर सत्यानंद ने शांति को जाने के लिए कहा।

शांति ने दिल ही दिल में कहा—'अच्छा बूढ़े बाबा जी, मेरे माथे में अग्नि है। मैं जले माथे वाली हूँ या तुम्हारी अम्मा जले माथे वाली है ?'

असल में सत्यानंद का ऐसा कहने का मतलब नहीं था, नेत्रों की बिजली की बात ही उन्होंने कही थी, परन्तु ऐसा भी कभी बुढ़ापे में किसी नवयुवती को कहा जाता है ?

———

आठवाँ परिच्छेद

उस रात्रि में शांति को मठ में रहने की आज्ञा मिल गई, इसलिए कमरा खोलने लगी। बहुत-से कमरे खाली पड़े थे। गोवर्द्धन नाम का एक परिचारक था, वह भी छोटा-मोटा संतान था, चिराग हाथ में लेकर कमरे दिखलाता हुआ घूमने लगा। कोई भी कमरा शांति को पसन्द नहीं आया। हताश होकर गोवर्द्धन लौटकर शांति को सत्यानन्द के पास ले गया। शांति ने कहा—'भाई संतान, इधर जो कुछ कमरे रह गये हैं, वे अभी नहीं देखे।'

गोवर्द्धन ने कहा—'वे कमरे अच्छे जरूर हैं, लेकिन वे आदमियों से भरे हैं।'

शांति—'कौन-कौन हैं?'

गोवर्द्धन—'बड़े-बड़े सेनापति हैं।'

शांति—'बड़े-बड़े सेनापति कौन हैं?'

गोवर्द्धन—'भवानन्द, जीवानन्द, धीरानन्द, ज्ञानानन्द। आनन्दमठ आनन्दमय है।'

शांति—'चलो, कमरे देखें तो।'

गोवर्द्धन शांति को पहले धीरानन्द के कमरे में ले गया। धीरानन्द महाभारत का द्रोणपर्व खोलकर पढ़ रहे थे। अभिमन्यु ने किस प्रकार सप्तरथियों के साथ युद्ध किया था, उसी में मन लगा हुआ था, वे बोले नहीं। शांति वहाँ से बिना कुछ कहे चल दी।

इसके बाद शांति भवानन्द के कमरे में गई। भवानन्द तब निगाह उठाये हुए एक मुँह सोच रहे थे। किसका मुँह है, यह नहीं मालूम, लेकिन मुँह बड़ा सुन्दर है, काली घुँघराली खुशबूदार अलकें कानों तक तक फैली हुई भौंहों पर पड़ रही हैं, बीच में अनिन्द्य त्रिकोण ललाट मृत्यु की कराल छाया में डूबा हुआ। जैसे वहाँ मृत्यु और मृत्युञ्जय लड़ रहे हैं। आँखें मुँदी हुई, भौंहें स्थिर, ओंठ नीले, गण्ड पाण्डुर, नासा शीतल, वक्ष उन्नत, हवा कपड़े उड़ा रही है। इसके बाद जैसे शरत् के मेघों में ढँका चाँद क्रमशः मेघों को अपनी चाँदनी से उद्‌भासित करके अपना सौंदर्य

फैलाता है, जिस प्रकार सुबह का सूरज तरङ्गों के आकार की मेघमाला को क्रमशः सोने से रँगकर स्वयं प्रकाशित होता है, दिशाओं को चमका देता है; जल-स्थल और कीट-पतङ्गों को खुश कर देता है, उसी प्रकार उस शव में जीवन की शोभा का सञ्चार हो रहा था। अहा, कैसी शोभा! भवानन्द यही सोच रहे थे, उन्होंने भी कोई बात नहीं की। कल्याणी के रूप से उसका हृदय जल गया था, शांति के रूप पर उसने दृष्टि नहीं डाली।

शान्ति तब दूसरे कमरे में गई। पूछा—'यह किसका कमरा है?'

गोवर्द्धन ने कहा—'जीवानंद महाराज का।'

शान्ति—'वह कौन हैं? यहाँ तो कोई नहीं दिखता!'

गोवर्द्धन—'कहीं चले गये हैं, अभी आयेंगे।'

शांति—'यह कमरा सब कमरों से अच्छा है।'

गोवर्द्धन—'लेकिन यह कमरा तो नहीं मिल सकता।'

शांति—'क्यों?'

गोवर्द्धन—'यहाँ जीवानंद महाराज रहते हैं।'

शांति—'न हो वे कोई दूसरा कमरा खोज लें।'

गोवर्द्धन—'ऐसा भी कहीं होता है! जो इस कमरे में रहते हैं, उन्हें मालिक समझिए, जो कुछ वे कहते हैं वही होता है।'

शांति—'अच्छा, अब तुम जाओ, मुझे स्थान नहीं मिलेगा तो वृक्ष के नीचे पड़ी रहूँगी।'

इतना कहकर गोवर्द्धन को विदाकर शांति उस कमरे के भीतर गई। भीतर जाकर जीवानंद का मृग-चर्म बिछाकर चिराग जलाकर जीवानन्द की एक पुस्तक निकालकर पढ़ने लगी।

थोड़ी देर बाद जीवानंद आकर उपस्थित हुए। शांति का पुरुष-वेश है, फिर भी उसे देखते ही पहचान गये, कहा—यह कौन, शांति?

धीरे-धीरे पुस्तक रखकर जीवानंद के मुँह की तरफ देखकर शांति बोली—शांति कौन है, महाशय?

जीवानंद अवाक् हो गये, अन्त में कहा—क्यों, तुम शांति नहीं हो?

शांति ने मुँह बनाकर कहा—'नवीनानंद गोस्वामी हूँ।' इतना कहकर फिर वह पुस्तक में जुट गई।

जीवानंद ठहाका मारकर हँसने लगे; कहा—यह नया व्यङ्ग अवश्य है। अच्छा तो फिर नवीनानंद! यहाँ क्या सोचकर चले आये?

शांति ने कहा—भले आदमियों में यह रिवाज प्रचलित है कि पहली बातचीत के समय 'आप' 'महाशय' आदि सम्बोधन करते हैं। मैं भी आपके लिए असम्मान सूचक शब्द नहीं कह रहा, तो फिर क्यों आप मुझे 'तुम, तुम' कह रहे हैं?

'महाशय जी' कहकर गले में वस्त्र डालकर हाथ जोड़कर जीवानंद ने कहा—इस समय विनीत भाव से भृत्य का निवेदन है, किस लिए भरुईपुर से इस दीन के कमरे में शुभागमन हुआ है, बताइए?

बहुत गम्भीर बनकर शांति ने कहा—व्यङ्ग का भी मतलब मुझे नहीं दिखाई पड़ता। भरुईपुर मैं नहीं पहचानता। मैं संतान-धर्म ग्रहण करने के लिए आज दीक्षित हुआ हूँ।

जीवानंद—आह सर्वनाश! सच है क्या?

शांति—सर्वनाश क्यों? आप भी तो दीक्षित हैं।

जीवानंद—तुम स्त्री जो हो।

शांति—वह क्या? ऐसी बात आपको कहाँ मिली?

जीवानंद—मेरा विश्वास था, मेरी ब्राह्मणी स्त्री-जाति की थी।

शांति—ब्राह्मणी? अब भी है?

जीवानंद—थी, ऐसा ही जानता हूँ।

शांति—आपका विश्वास है कि मैं आपकी ब्राह्मणी हूँ?

जीवानंद ने फिर हाथ जोड़कर गले में वस्त्र डालकर बड़े विनीत भाव से कहा—जी हाँ, महाशय।

शांति—अगर ऐसा व्यङ्ग आपके मन में उठा तो आपका कर्तव्य क्या है, बताइए न?

जीवानंद—आपके शरीर का वस्त्र जबरदस्ती उतार कर आपके ओठों

का अमृत पान करना।

शांति—यह आपकी बहुत ही बुरी नियत है या गाँजे के बहुत चस्के का परिचय। आपने दीक्षा के समय शपथ ली है कि किसी स्त्री के साथ एक आसन पर नहीं बैठेंगे। अगर आपको विश्वास हुआ है कि मैं स्त्री हूँ, ऐसा साँप में रस्सी का भ्रम बहुतों को होता है, तो आपके लिए उचित है कि अलग आसन पर आप बैठें। मेरे साथ आपकी बातचीत तक नहीं होनी चाहिए।

इतना कहकर शांति ने फिर पुस्तक में मन लगाया। परास्त होकर जीवानंद दूसरा बिस्तर तैयार करके लेट गये।

तीसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

भगवान् कृपा से छियत्तरहवें साल का अकाल खत्म हुआ। बङ्गाल के छः आने आदमियों को—कितने करोड़ होते हैं कौन जाने—यमपुर भेजकर यह बुरा साल काल के ग्रास में समा गया। सत्रहवें साल में ईश्वर प्रसन्न हुए। खूब पानी गिरा। पृथ्वी शस्यशालिनी हुई। जो बचे थे, उन्होंने पेट भर खाना खाया। बिना खाये या कम खाये हुए जो लोग रोगी हो गये थे, एक साथ पूरा भोजन वे हजम नहीं कर सके। बहुतेरे इसी से मर गये। पृथ्वी शस्यशालिनी तो हुई लेकिन जन-शून्य हो गई। गाँवों के खाली घर पशुओं के अड्डे या प्रेतों के भय का कारण बन गये। गाँवों में उर्वरा भूमि के सैकड़ों टुकड़े विना जोते परती रह गये या जङ्गलों से भर गये। सारा देश जङ्गलों से पूर्ण हो गया। जहाँ हँसती हुई श्यामल शस्यराशि थी, जहाँ असंख्य गाय भैंसें विचरण करती थीं, जिन बगीचों में ग्रामीण युवक-युवतियों का विहार होता था, वे सब क्रमशः गहनतर वन बनाने लगे। एक वर्ष, दो वर्ष, क्रमशः तीन वर्ष बीत गये। जङ्गल बढ़ता चला गया। जो जगह मनुष्य के सुख की जगह थी, वहाँ नर-मांस के लोलुप बाघ आकर हिरन आदि पर झपटने लगे। जहाँ सुन्दरियाँ पैरों में महावर लगाकर, नूपुर बजाती हुई, सहेलियों से व्यंग्य करती हुई, खिलखिलाकर हँसती हुई जाती थीं, वहाँ भालू माँद बनाकर अपने बच्चे पालने लगे। जहाँ छोटी आयु में बालक शाम को मल्लिका के फूल जैसे खिले हुए, हृदय को तृप्ति देने वाली हँसी हँसते थे, वहाँ आज दल के दल जङ्गली हाथी मदमत्त होकर वृक्षों के तने उखाड़ फेंकने लगे। जहाँ

नवदुर्गा की पूजा होती थी, वहाँ स्यारों की माँदें बन गईं; भगवान् के झूले वाले मञ्च पर उल्लुओं के अड्डे बन गये; नाट-मन्दिर में विषैले साँप दिन को मेढकों की खोज करने लगे। बङ्गाल में अन्न पैदा होता है, खानेवाले कोई नहीं। बेचने का माल पैदा होता है, खरीदने वाले आदमी नहीं। किसान खेती करते हैं, लेकिन रुपये नहीं पाते—जमींदार को लगान नहीं दे पाते। राजा ने जमींदारी छीन ली, इसलिए जमींदारों का दल सब कुछ खोकर दरिद्र होने लगा। वसुन्धरा ने बहुत अन्न दिया, फिर भी धन नहीं हो रहा, किसी के घर में धन नहीं है। चोर और डाकुओं ने सर उठाया, भले आदमियों ने भय से घरों में मुँह छिपाया।

इधर सन्तानों का सम्प्रदाय चन्दन और तुलसी दल से विष्णु भगवान् के पादपद्म पूजता है, और जिसके घर में बन्दूक और पिस्तौल देखता है, छीन लाता है। भवानन्द ने कह दिया था—'भाई, अगर एक तरफ एक घर में हीरे-मणि और प्रवाल आदि देखो और दूसरी तरफ एक टूटी बन्दूक देखो, तो हीरे, मणि और प्रवाल वगैरह छोड़कर टूटी बन्दूक उठा लाना।

इसके बाद गाँव-गाँव वे लोग चर भेजने लगे। चर गाँव जाकर जहाँ हिन्दू देखते थे, कहते थे—'भाई विष्णु-पूजा करोगे?' यह कहकर बीस-पच्चीस आदमी इकट्ठे कर मुसलमानों के गाँव में टूटकर उनके घरों में आग लगा देते हैं, मुसलमान अपने प्राण बचाने के लिए निकलते, भगते हैं, सन्तान उनका सर्वस्व लूटकर नये विष्णुभक्तों को देते हैं। लूट के हिस्से से ग्रामवासी सन्तुष्ट होते हैं तो वे चर उन्हें विष्णु-मन्दिर में लाकर विग्रह के चरण स्पर्श कर उन्हें संतान बनाते हैं। लोगों ने देखा, संतान होने में बड़ा लाभ है। विशेषतः मुसलमान-राज्य की अराजकता और बुरे शासन से सब मुसलमानों से अप्रसन्न थे। हिन्दू धर्म के विलोप से बहुत हिन्दू हिन्दुत्व की स्थापना के लिए आग्रहयुक्त थे। इसलिए दिन दिन सन्तानों की संख्या बढ़ने लगी। प्रतिदिन सैकड़ों हजारों संतान आ-आकर भवानन्द, जीवानन्द के चरणों में प्रणाम

कर, दलबद्ध होकर सब ओर मुसलमानों के शासन के लिए निकलने लगे। जहाँ राज-कर्मचारी देखते थे, पकड़कर पीटते थे, कभी कभी जान लेते थे, जहाँ रुपया देखते थे, लूटकर घर ले आते थे; जहाँ मुसलमानों का गाँव देखते थे, जलाकर राख कर देते थे। स्थानीय राजपुरुष सन्तानों के शासन के लिए अधिक से अधिक सेना भेजने लगे, लेकिन इस समय सन्तान दलबद्ध थे, शस्त्रयुक्त और अत्यन्त गर्वित। उनके दर्प के सामने मुसलमान सेना नहीं बढ़ सकी। अगर बढ़ी तो अमित बल से सन्तान उन पर टूटकर उन्हें छिन्न-भिन्न करके हरिध्वनि करते थे। यदि कभी किसी संतानों के दल को यवन-सैनिकों ने हराया, तो तभी एक दल संतानों का कहीं से आकर विजेताओं के सर काटकर हरिध्वनि करते हुए चले जाते थे। इसी समय भारतीय अङ्गरेजों के प्रातःसूर्य वारेन हेस्टिंग्स साहब भारत के गवर्नर-जनरल थे। कलकत्ते में बैठे हुए लोहे की जञ्जीर बनवाकर उन्होंने मन में सोचा, इस जञ्जीर से मैं सद्वीपा, ससागरा भारत भूमि को बाँधूँगा। एक दिन जगदीश्वर ने सिंहासन पर बैठकर निःसन्देह कहा था—'तथाऽस्तु।' लेकिन वह दिन अभी दूर है। आज के दिन सन्तानों की प्रचण्ड हरिध्वनि से वारेन हेस्टिंग्स भी काँप उठे।

वारेन हेस्टिंग्स ने पहले फौज के सिपाहियों के विद्रोह रोकने की कोशिश की। लेकिन फौज के सिपाहियों की ऐसी हालत हुई थी कि वे किसी बुड्ढी स्त्री के मुँह से हरिध्वनि सुनकर भाग खड़े होते थे। अस्तु कोई उपाय न देखकर वारेन हेस्टिंग्स ने कैप्टेन टामस नाम के एक सुदक्ष सैनिक के नायकत्व में कम्पनी की एक सेना विद्रोह रोकने के लिए भेजी।

कैप्टेन टामस पहुँचकर विद्रोह निवारण का बहुत अच्छा प्रयत्न करने लगे। राजा की सेना और जमींदारों की सेना माँगकर कम्पनी के सुशिक्षित सशस्त्र बहुत ही बली देशी-विदेशी सिपाहियों को साथ लिया। बाद को उस मिली सेना के कई दल किये और योग्य योद्धा के मातहत एक-एक दल रखा। बाद को उन योद्धाओं को देश बाँट दिया, कह दिया—

'तुम अमुक प्रदेश में मल्लाह की तरह जाल से पानी छानते हुए—जैसे जाओगे; जहाँ विद्रोही देखना, चींटी की तरह उसका प्राण निकाल लेना।' कम्पनी के सिपाहियों में कोई गाँजे की दम लगाकर, कोई रम पीकर बन्दूक में सङ्गीन चढ़ाकर संतान-वध के लिए दौड़े। लेकिन संतान इस समय असंख्य थे, अजेय, कैप्टन टामस की सेना किसानों के हँसिये से खेती जैसी कटने लगी। 'हरि-हरि' ध्वनि से कैप्टेन टामस के कान बहरे हो गये।

दूसरा परिच्छेद

उस समय कम्पनी की बहुत-सी रेशम की कोठियाँ थीं। वैसी एक कोठी शिवग्राम में थी। डनीवर्थ साहब उस कोठी के फैक्टर यानी अध्यक्ष थे। कोठियों की रक्षा के लिए सुव्यवस्था थी। डनीवर्थ इसीलिए किसी तरह जान बचा सके थे, परन्तु अपनी स्त्री-कन्याओं को कलकत्ता भेज देने के लिए मजबूर हुए थे, और वे स्वयं सन्तानों से उत्पीड़ित हुए थे। इस प्रदेश में कैप्टेन टामस साहब दो-चार फौजों के साथ तशरीफ ले आये। इस समय इतर जातियों के कमअक्ल, हाड़ी, डोम, बागदी, बूनो, सन्तानों का उत्साह देखकर धन लूटने को तैयार हो रहे थे। उन लोगों ने कैप्टेन टामस की रसद पर आक्रमण किया। कैप्टेन टामस की सेना के लिए गाड़ियों में लदा हुआ उत्तम घी, मैदा, मुर्ग और चावल जा रहा था—देखकर डोम-बागदियों का दल लोभ नहीं सँभाल सका। वे लोग गाड़ी पर टूटे, परन्तु कैप्टेन टामस के सिपाहियों की दो-चार बन्दूकों के कुन्दों की मार खाकर भाग खड़े हुए। कैप्टेन टामस ने उसी वक्त कलकत्ता रिपोर्ट भेजी कि आज एक सौ सत्तावन सिपाही लेकर चौदह हजार सात सौ विद्रोहियों का दमन किया गया। विद्रोहियों में दो हजार एक सौ तिरपन आदमी मरे हैं, एक हजार दो सौ तेइस घायल हुए हैं, सात आदमी कैद हुए हैं। सिर्फ आखिरी बात सही है। कैप्टेन टामस, दूसरे ब्लेनहिम या रसबाक का युद्ध जीते, सोचकर मूछों पर ताव देते हुए निडर होकर इधर-उधर घूमने लगे और डनीवर्थ साहब को सलाह देने लगे कि, अब क्या है;

अब विद्रोह ठण्डा पड़ गया है, तुम अपनी स्त्री-कन्याओं को कलकत्ते से ले आओ। डनीवर्थ साहब ने कहा—'ठीक है; दस रोज आप यहाँ रहिए, देश कुछ और स्थिर हो, स्त्री और लड़कों को ले आऊँगा।' डनीवर्थ साहब के यहाँ पाले हुए मुर्गी और दुम्बे थे। पनीर भी उनके यहाँ बहुत अच्छी थी। बहुत किस्म की जङ्गली चिड़ियाँ उनके टेबिल की शोभा बढ़ाती थीं। दाढ़ीवाला बवर्ची जैसे दूसरी द्रौपदी था। अस्तु बिना जबान हिलाये कैप्टन टामस वहाँ रहने लगे।

इधर भवानन्द आवेश में हैं, सोच रहे हैं, कब इस कप्तान टामस बहादुर का सर काटकर दूसरे सवारारि का उपाधि लूँगा। अङ्गरेज भारत के उद्धार के लिए आये थे, यह सन्तान तब तक नहीं समझे। किस तरह समझेंगे? कैप्टेन टामस और समसामयिक अङ्गरेज भी नहीं समझे। तब केवल विधाता के मन में यह बात थी। भवानन्द सोच रहे थे, इन असुरों का वंश एक दिन में मारूँगा, सब एकत्र हों, कुछ असतर्क हों, इस समय हम लोग कुछ अलग रहें। इसलिए वे इस समय दूर-दूर रहे। कैप्टेन टामस साहब ने निष्कण्टक होकर द्रौपदी के गुणग्रहण में चित्त लगाया अर्थात् अच्छा खाने-पीने लगे।

साहब बहादुर को शिकार से बहुत प्रेम था। कभी-कभी शिवग्राम के पासवाले जङ्गल में मृगया के लिए निकलते थे। एक दिन डनीवर्थ साहब के साथ घोड़े पर चढ़े हुए, कुछ शिकारियों को लेकर कैप्टेन टामस शिकार के लिए बाहर निकले। क्या कहें, टामस साहब हिम्मत में बेजोड़ थे, बल और वीरता में अङ्गरेज में भी कोई मुकाबला नहीं कर सकता था। वह घना जङ्गल बाघ, भालू और भैंसों से बड़ा भयानक था। बहुत दूर तक बढ़कर शिकारी और आगे चलने को राजी न हुए; कहा—'भीतर और रास्ता नहीं है, हम लोग आगे नहीं बढ़ सकेंगे। डनीवर्थ साहब उस जङ्गल में ऐसे भयानक बाघ के सामने पड़े थे कि वे भी आगे बढ़ने को अनिच्छुक न हुए। उन सबों ने लौटना चाहा। कैप्टेन टामस ने कहा—'तुम लोग लौटो, मैं नहीं लौटूँगा।' इतना कहकर कैप्टेन साहब घने जङ्गल में घुसे।

सच बात यह है कि जङ्गल में रास्ता नहीं था। घोड़ा भीतर नहीं जा

सका। लेकिन साहब घोड़ा छोड़कर कन्धे पर बन्दूक लेकर अकेले-अकेले जङ्गल में घुसे। घुसकर इधर-उधर खोजते हुए बाघ नहीं देखा। क्या देखा? एक बड़े पेड़ के नीचे खिले फूलों के लता-गुल्मों से घिरकर कोई बैठा हुआ है। एक नवीन संन्यासी, रूप से जङ्गल को आलोकित कर रहा है। खिले फूल जैसे उस स्वर्गीय शरीर के संसर्ग से और भी सुगन्धित हो रहे हैं। कैप्टेन साहब देशी भाषा विलक्षण जानते थे, पूछा—'टुम कौन है?'

संन्यासी ने कहा—मैं संन्यासी हूँ।

कैप्टेन ने कहा—टुम बागी है।

संन्यासी—वह क्या?

कैप्टेन—हम टुमको गोली मारेगा।

संन्यासी—मारो।

कैप्टेन मन में कुछ सन्देह कर रहे थे कि गोली मारेंगे या नहीं, ऐसे समय उस नवीन संन्यासी ने बिजली की तरह उन पर टूटकर उनके हाथ से बन्दूक छीन ली। फिर उसने अपने हृदय का चर्मावरण खोलकर फेंक दिया। खींचकर जटाएँ खोल दीं। कैप्टेन टामस साहब ने देखा, अपूर्व स्त्री-मूर्ति है। सुन्दरी हँसती हुई बोली—'साहब मैं स्त्री हूँ, किसी को चोट नहीं पहुँचाती। तुमसे एक बात पूछ रही हूँ; हिन्दू मुसलमान जूझ रहे हैं, तुम लोग बीच में क्यों पड़ते हो? अपने घर लौट जाओ।'

साहब—टुम कौन है?

शान्ति—देख तो रहे हो संन्यासिनी हूँ। जिनसे लड़ने आये हो, उनमें से किसी की पत्नी हूँ।

साहब—टुम हमारे घर में रहेगा?

शान्ति—क्या? तुम्हारी रखेली की तरह?

साहब—ईस्टीरी की तरह रह सकता है, लेकिन शादी नहीं होगा।

शांति—मुझे भी एक बात पूछनी है। हमारे घर में एक रूपी बन्दर था। अब वह मर गया है। उसकी जगह खाली है। मैं तुम्हारी कमर में जञ्जीर बाँधूँगी, तुम उस जगह रहोगे? हमारे बगीचे में बहुत अच्छे

केले होते हैं।'

साहब—'टुम बरा sprited women है। टुमारे courage से हम बहुत खुश है। टुम हमारे घर चलो। टुमारा पति लड़ाई में मरेगा। टब टुमारा क्या होगा?'

शान्ति—'तो तुम्हारी हमारी एक बात तय रही, लड़ाई तो दो चार दिन बाद होगी ही। तुम अगर जीते तो मैं तुम्हारी रखेली होकर रहूँगी, मन्जूर करती हूँ, अगर बची रही। और हम जीते तो तुम हमारे यहाँ बन्दर बन कर केले खाओगे तो?'

साहब—'केले खाने में अच्छा होटा है, अभी है?'

शान्ति—'ले, अपनी बन्दूक ले। ऐसी जङ्गली जाति से भी कोई बातचीत करता है।'

शान्ति बन्दूक फेंककर हँसती हुई चल दी।

तीसरा परिच्छेद

शान्ति साहब को छोड़कर हरिणी की तरह क्षिप्र चरणों से जङ्गल में न जाने कहाँ चली गई। साहब ने कुछ देर बाद सुना—स्त्री कण्ठ से गाना हो रहा है—

'कौन रोके जवानी की लहरें?
हरे मुरारे! हरे मुरारे!'

फिर कहीं सरङ्गी में मधुर ध्वनि में वही बजा—

'कौन रोके जवानी की लहरें!
हरे मुरारे! हरे मुरारे!'

उसके साथ पुरुष का कण्ठ मिला गाना चलता रहा—

'कौन रोके जवानी की लहरें!
हरे मुरारे! हरे मुरारे!'

तीनों स्वर एक होकर जङ्गल की लताओं को कँपाने लगे। शान्ति गाती हुई चल दी—

'कौन रोके जवानी की लहरें!

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !
उठा समुन्दर में तूफान,
मेरी नई नाव बहती है,
माझी ने पतवार पकड़ ली,
रहा न दुःख का नाम निशान,
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !
बालू का तोड़ा है बाँध,
पूरा करते मन की साध,
ज्वार चढ़ा, रोकेगा कौन ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !'

सरङ्गी में भी बज रहा था—

'ज्वार चढ़ा; रोकेगा कौन ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !'

जहाँ बहुत ही घना जङ्गल है, भीतर क्या है, बाहर से बिल्कुल नहीं देख पड़ता, शान्ति उसी के भीतर घुसी। वहाँ शाखा-पल्लव-राशियों में छिपी हुई एक कुटी है। डाल ही उसके बँधने पत्तों का छावन, लकड़ी की फर्श उस पर मिट्टी डाली हुई। उसी के भीतर लता का द्वार खोलकर शान्ति गई। वहाँ जीवानन्द बैठे हुए सरङ्गी बजा रहे थे।

जीवानन्द ने शान्ति को देखकर पूछा—'ज्वार चढ़ा रोकेगा कौन' इसका क्या मतलब ?

शान्ति ने हँसकर जवाब दिया—ज्वार का पानी कहीं नाले में और तालाब में भी दौड़ता है !

जीवानन्द बोले—देखो शान्ति, एक दिन मेरा व्रत टूट चुका है, जिसमें मेरे प्राण उत्सर्गीकृत हो चुके हैं। जो पाप है, उसका प्रायश्चित्त तो करना ही होगा। अब तक यह प्रायश्चित्त कर डालता, केवल तुम्हारे अनुरोध से नहीं किया। लेकिन एक बड़ी लड़ाई की अब देर नहीं। उस लड़ाई के मैदान में मुझे उस पाप का प्रायश्चित करना होगा। इन प्राणों का परित्याग करना ही होगा। मेरे मरने के दिन...!'

शांति बीच में ही बोली—'मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूँ, सहधर्मिणी, धर्म में सहायिका। तुमने बड़ा ही गम्भीर धर्म ग्रहण किया है। उस धर्म की मदद के लिए ही मैं घर छोड़कर आई हूँ और जङ्गल में रह रही हूँ। मैं तुम्हारा धर्म बढ़ाऊँगी। धर्मपत्नी होकर तुम्हारे धर्मों मे विघ्न क्यों पैदा करूँगी। विवाह इहकाल के लिए भी है और विवाह परकाल के लिए भी है। इहकाल के लिए जो विवाह है, सोच लो, वह हम लोगों का नहीं हुआ। हमारा विवाह केवल परकाल के लिए है। परकाल में दूना फल होगा। लेकिन प्रायश्चित्त की बात क्यों? तुमने कौन-सा पाप किया है? तुम्हारी प्रतिज्ञा है, किसी स्त्री के साथ एक आसन पर नहीं बैठोगे। कहाँ, किसी दिन तो एक आसन पर नहीं बैठे। प्रायश्चित्त क्यों? हाय स्वामिन्, तुम मेरे गुरु हो, मैं तुम्हें क्या धर्म सिखलाऊँगी? तुम वीर हो, तुम्हें वीर व्रत सिखाऊँ?'

जीवानंद आनंद से गद्गद होकर बोले—'सिखाया तो!' शान्ति प्रफुल्ल चित्त से कहने लगी—'और भी देखिए, गोस्वामी जी इस लोक में भी क्या हमारा विवाह निष्फल है? तुम मुझे प्यार करते हो, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, इससे अधिक इस लोक में और कौन-सा फल है? कहो, वन्देमातरम्।'

इसके बाद दोनों ने एक साथ 'वन्दे मातरम्' गाया।

चौथा परिच्छेद

भवानंद गोस्वामी एक दिन नगर में पहुँचे। चौड़ा आम रास्ता छोड़ कर एक अँधेरी गली के अन्दर गये। गली के दोनों ओर ऊँची-ऊँची इमारतें हैं। सूरज दोपहर को एक बार गली के भीतर झाँकते हैं। इसके बाद अँधेरे का ही अधिकार रहता है। गली की बगल में एक दोमञ्जिले घर में भवानन्द घुसे। नीचे वाले तले के एक कमरे में जहाँ एक अधेड़ स्त्री भोजन पका रही थी; वहीं चलकर भवानन्द महाप्रभु ने दर्शन दिये। स्त्री अधेड़ है, गदबदी और काली, उज्ज्वल धोती पहने, माथे में

गोदना, सर के बाल सामने की ओर जूड़े की तौर पर बँधे, चावल की हाँडी में लकड़ी चलाने की ठनाठन ठनाठन आ रहा है; लटें हवा में फर-फर उड़ रही हैं; स्त्री आप ही आप बक-बक कर रही है। तरह-तरह से वह मुँह बना रही है और उसका जूड़ा बल खा रहा है। ऐसे समय भवानन्द महाप्रभु मकान में बैठकर बोले—'महाराजिन दीदी प्रणाम !

महाराजिन दीदी भवानंद को देखकर व्यस्त होकर धोती सँभालने लगीं। सर का मोहक जूड़ा खोल डालने की इच्छा थी, लेकिन सुभीता नहीं हुआ, क्योंकि हाथ पके अन्न में लग चुके थे। भीगे चिकने वे बाल, हाय ! इस पर पूजा के समय एक फूल उन पर पड़ा था। धोती के आँचल से उन्होंने ढकने की कोशिश की, परन्तु आँचल ढकने को सक्षम नहीं हुआ, क्योंकि महाराजिन ने एक पाँच हाथ की धोती पहनी थी। वह पचहत्थी धोती तोंद को घेरकर आते-आते करीब-करीब समाप्त हो चुकी थी। इस पर भारीपन के कारण न सहे जानेवाले हृदय-मण्डल की भी बहुत कुछ लाज बचानी पड़ी। गले तक पहुँचकर धोती के आँचल ने जवाब दे दिया था। कान के ऊपर चढ़कर कहा, अब आगे मेरी पहुँच नहीं। लाचार, परम लज्जावती गौरी महराजिन ने धोती के आँचल को कानों के पास पकड़ रक्खा और भविष्य में आठ हाथ की धोती खरीदने की मन ही मन दृढ़ प्रतिज्ञा करके कहा—'कौन ? गोसाईं जी !' आओ ! मुझे फिर राम राम क्यों भाई ?'

भवानन्द—'तुम आजी जो हो।'

गौरी—'आदर देकर कहते हो, इसलिए तुम लोग गोसाईं देवता हो। अच्छा, आदर दिया है, तो दे ही चुके हो, बचे रहो; दो तो दे भी सकते हो, कितना भी हो मैं उम्र में बड़ी हूँ।'

इस समय भवानन्द से गौरीदेवी अवस्था में पच्चीस साल बड़ी हैं, परन्तु चतुर भवानन्द ने जवाब दिया—'यह कैसी बात, आजी ? तुम सरस स्त्री हो, इसलिए तुम्हें आजी कहता हूँ। नहीं तो जब हिसाब हुआ था, तुम मुझसे छः साल की छोटी ठहरी थी, याद नहीं ? हम वैष्णवों

में सब से श्रेष्ठ हैं-जानती हो; मेरी मन में इच्छा है, मठाधीश ब्रह्मचारी से कहकर तुम्हें बैठा लूँ। यही बात कहने के लिए आया हूँ।'

गौरी—यह कैसी बात ? छिः ! ऐसी बात भी कोई कहता है ? हम लोग जो विधवा ठहरीं।'

भवानन्द—'तो बैठोगी नहीं ?'

गौरी—'अच्छा भाई, जैसा जान पड़े, वैसा करो। तुम लोग पण्डित हो, हम विधवा स्त्रियाँ क्या समझें ? तो यह कब होगा ?'

भवानन्द ने बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर कहा—'उस ब्रह्मचारी से एक बार मुलाकात भर हो। और वह कैसी है ?'

गौरी का चेहरा उतर गया। मन ही मन निश्चय किया, बैठाने वाली बात तो फिर मजाक है। कहा—'है और कैसी, जैसी रहती है !'

भवानन्द—'तुम जाकर एक बार देख आओ, कैसी है; मैं आया हूँ, एक बार मिलना चाहता हूँ।'

गौरी देवी तब भात वाली लकड़ी डालकर हाथ धोकर, जीने की ऊँची-ऊँची सीढ़ियाँ तय करती हुई दो-मञ्जिले पर चढ़ने लगी, एक कमरे में एक फटी चटाई पर एक अपूर्व सुन्दरी बैठी है। लेकिन सौंदर्य पर एक घनी छाया पड़ी हुई है। दोपहर में, किनारों को छापने वाली, विपुल जल से कल्लोल करती हुई स्वच्छन्द नदी के हृदय पर बहुत ही निविड़ मेघों की छाया की तरह कौन-सी एक छाया है। नदी के हृदय पर तरंगें टूट रही हैं, किनारे पर खिले पेड़-पौधे हवा में हिल रहे हैं, घने फूलों के भार से झुक रहे हैं, अट्टालिकाओं की कतारें भी शोभा पा रही हैं। नावों के खेये जाने से जल आनन्दोलित हो रहा है। समय दोपहर का है, फिर भी उस घने बादलों की काली छाँह में सारी शोभा श्यामल है। यह भी वैसी ही। वही पहले की तरह चारु चिकने चञ्चल घने अलक, पहले की तरह के उस प्रशान्त भरे पूरे ललाट-पर पहले की ही तरह अतुल तूलिका से विचित्र भ्रू धनु, पहले की तरह चिरी सजल उज्ज्वल काली पुतलियों वाले बड़े-बड़े नेत्र, उतने कटाक्षमयी नहीं, उतने गोल नहीं, कुछ नम्र। अधर पर वैसा ही राग रञ्ज, हृदय उसी तरह साँसों के साथ-साथ

पर्वतों से चढ़ता उतरता हुआ, वों हैं वैसी ही वनलताओं में न पाई जाने वाली कोमलता से भरी। लेकिन आज वह दीप्ति नहीं, वह उज्ज्वलता नहीं, वह प्रखरता नहीं, वह चञ्चलता नहीं, वह रस नहीं। क्या कहें, शायद वह यौवन नहीं है। है सिर्फ सौंदर्य और वह माधुर्य। नये नये हुआ है धैर्य—गाम्भीर्य। इन्हें पहले देखने पर मालूम होता, मनुष्य लोक में ये बेजोड़ सुन्दरी हैं, अब देखने पर जान पड़ता है, ये देवलोक में शापग्रस्ता देवी हैं। इनके इधर-उधर जर्द रंग के मोटे कागज की दो-तीन पुस्तकें पड़ी हुई हैं? दीवार पर जपने की माला टँगी है, और बीच-बीच जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा के पट, कालिय-दमन, बनवारी कुञ्जर, वस्त्र हरण, गोवर्धन धारण आदि व्रजलीला के चित्र खिंचे हैं। चित्रों के नीचे लिखा है, चित्र हैं या विचित्र।' इसी कमरे में भवानन्द बैठ गये।

भवानन्द ने पूछा—'क्यों कल्याणी, दैहिक कुशल तो है?'

कल्याणी—'क्या यह प्रश्न आप छोड़ेंगे नहीं? मेरे दैहिक कुशल से आपका क्या बनता है और मेरा भी क्या बनता है?'

भवानन्द—'जो पेड़ लगाता है, वह उसमें रोज पानी सींचता है। पेड़ बड़ा होने पर ही उसका सुख है। तुम्हारे मृत शरीर में मैंने जान डाली थी, वह बढ़ रही है या नहीं, क्यों नहीं पूछूँगा?'

कल्याणी—'विषवृक्ष भी कुम्हलाता है?'

भवानन्द—'जीवन क्या विष है?'

कल्याणी—'नहीं तो, मैंने अमृत डालकर उसे नष्ट क्यों करना चाहा?'

भवानंद—'कितनी बार पूछूँगा, सोचा, हिम्मत करके पूछ नहीं सका। किसने तुम्हारे जीवन को विषमय किया था?'

कल्याणी ने स्थिर होकर उत्तर दिया—किसी ने मेरे जीवन को विषमय नहीं किया—जीवन ही विषमय है। मेरा जीवन विषमय है, आपका जीवन विषमय है, सबका जीवन विषमय है।'

भवानन्द—'सत्य है कल्याणी, मेरा जीवन विषमय है। जिस दिन

तुम्हारा व्याकरण खत्म हो गया है।

कल्याणी—नहीं।

भवानन्द—अभियान !

कल्याणी—अच्छा नहीं लगता।

भवानंद—पढ़ने में कुछ आग्रह देखा था, इस समय यह अश्रद्धा क्यों है !'

कल्याणी—आप की तरह के पण्डित भी जब महापापिष्ठा हैं तब लिखना-पढ़ना न सीखना ही अच्छा है। मेरे पति की क्या खबर है प्रभु ?

भवानंद—बार-बार यह खबर क्यों पूछती हो, वे तुम्हारे लिए मर गये हैं।

कल्याणी—मैं उनके लिए मरी हूँ, वे मेरे लिए नहीं।

भवानंद—तुम्हारे लिए मृतवत् होंगे, इसलिए तो तुम मरी, बार बार वह बातें क्यों करती हो कल्याणी ?

कल्याणी—करने पर क्या सम्बन्ध दूर होता है, वे कैसे हैं !

भवानंद—अच्छे हैं।

कल्याणी—कहाँ हैं ! पदचिह्न में !

भवानंद—वहीं हैं।

कल्याणी—क्या काम कर रहे हैं !

भवानंद—जो काम कर रहे थे, दुर्ग-निर्माण, अस्त्र-निर्माण। इन्हीं के बनवाये अस्त्रों से सहस्र-सहस्र संतान सज्जित हो रहे हैं। उनके कल्याण से तोप, बन्दूक, गोली, गोला और बारूद की अब हमें कमी नहीं रही। सन्तानों में वही श्रेष्ठ हैं। हमारा बहुत बड़ा उपकार कर रहे हैं, वे हमारे दाहिने हाथ हैं।

कल्याणी—मैंने प्राण न दिये होते तो क्या इतना होता ! जिसके पैरों में कीच भरा घड़ा बँधा है, वह क्या संसार-सागर में तैर सकता है ! जिसके पैरों में लोहे की जंजीर पड़ी है, वह क्या दौड़ता। संन्यासी, तुमने इन तुच्छ प्राणों को क्यों बचाया !

भवानन्द—स्त्री सहधर्मिणी है, धर्म की सहायक है।

कल्याणी—छोटे छोटे धर्म में। बड़े बड़े धर्म में कण्टक है। मैंने जहर के काँटे से उनके अधर्म का काँटा निकाल दिया था। छिः! दुराचारी कमीने ब्रह्मचारी! इन प्राणों को तुमने लौटाल क्यों दिया!

भवानन्द—अच्छा, जो कुछ दिया है, वह न हो मेरा ही रहा। जो प्राण तुम्हें मैंने दिये हैं, वे क्या तुम मुझे दे सकती हो?

कल्याणी—आपको क्या कोई खबर है? मेरी सुकुमारी कैसी है?

भवानंद—बहुत दिनों से यह खबर नहीं मिली। जीवानंद बहुत दिनों से उधर नहीं गये।

कल्याणी—वह खबर क्या मुझे आप ला नहीं दे सकते? पति ही मेरे त्याज्य हैं, अगर बची तो कन्या क्यों छोड़ूँगी? इस समय सुकुमारी को पाने पर इस जीवन में कुछ सुख आ सकता है। लेकिन मेरे लिए आप इतना क्यों करेंगे?

भवानंद—करूँगा, कल्याणी! तुम्हारी कन्या को ला दूँगी, लेकिन इसके बाद?

कल्याणी—इसके बाद क्या है महाराज?

भवानन्द—पति?

कल्याणी—उन्हें इच्छा से छोड़ा है।

भवानन्द—यदि उनका व्रत सम्पूर्ण हो?

कल्याणी—तो उन्हीं की हूँगी; मैं बची हूँ, क्या वे जानते हैं?

भवानन्द—नहीं।

कल्याणी—क्या आपसे उनकी भेंट नहीं होती है?

भवानन्द—होती है।

कल्याणी—मेरी बात क्या वे कुछ नहीं कहते?

भवानन्द—नहीं, जो स्त्री मर गई है, उसके साथ पति का और सम्बन्ध क्या है?

कल्याणी—आप क्या कह रहे हैं!'

भवानन्द—तुम फिर शादी कर सकती हो, तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है।'

कल्याणी—मेरी लड़की ला दो।

भवानन्द—ला दूँगा, तुम फिर ब्याह कर सकती हो?

कल्याणी—तुम्हारे साथ?

भवानन्द—शादी करोगी?

कल्याणी—क्या तुम्हारे साथ?

भवानन्द—अगर यही हो?

कल्याणी—सन्तान-धर्म कहाँ रहेगा?

भवानन्द—अतल जल में।

कल्याणी—परकाल?

भवानन्द—अतल जल में।

कल्याणी—यह महाव्रत?

भवानन्द—अतल जल में।

कल्याणी—किसलिए अब अतल जल में डुबाओगे?

भवानन्द—तुम्हारे लिए। देखो, मनुष्य हो, ऋषि हो, सिद्ध हो, देवता हो, चित्त अवश है। सन्तान-धर्म मेरा प्राण है, लेकिन आज पहले-पहल कहता हूँ, तुम्हीं मेरी प्राणाधिक प्राण हो, जिस दिन तुम्हें प्राणदान दिया था, उसी दिन से मैं तुम्हारे पैरों तले बिछा हुआ हूँ। मैं नहीं जानता था कि संसार में यह रूपराशि है। ऐसी रूपराशि मैं कभी आँखों से देखूँगा, यह मालूम रहने पर मैं सन्तान-धर्म ग्रहण न करता। यह धर्म इस आग में जलकर राख हो जाता है। धर्म जल गया है, प्राण हैं। आज चार साल से प्राण भी जल रहे हैं, अब नहीं रहना चाहते। दाह! कल्याणी! दाह! ज्वाला! लेकिन जो ईंधन जलेगा, वह नहीं रहा। प्राण निकलने को है। चार साल मैंने सहा है, अब और नहीं सह सकता। तुम मेरी बनोगी?'

कल्याणी—तुम्हारे ही मुख से सुना है कि सन्तान धर्म का एक नियम यह है कि जो इन्द्रिय के वश होता है, उसका प्रायश्चित्त मृत्यु है। यह बात क्या सत्य है?'

भवानन्द—हाँ, सत्य है।

कल्याणी—तो तुम्हारा प्रायश्चित्त मृत्यु है ?

भवानन्द—मेरा प्रायश्चित्त केवल मृत्यु है।

कल्याणी—मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँ तो तुम मरोगे ?

भवानन्द—अवश्य मरूँगा।'

कल्याणी—और यदि इच्छा पूरी न करूँ तो ?

भवानन्द—फिर भी मृत्यु मेरा प्रायश्चित्त है, क्योंकि मेरा मन इन्द्रिय के वशीभूत हुआ है।

कल्याणी—मैं तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं करूँगी। तुम कब मरोगे ?

भवानन्द—आने वाली लड़ाई में।

कल्याणी—तो तुम जाओ। क्या तुम मेरी लड़की को भेज दोगे ?

भवानन्द के नेत्रों में आँसू आ गये, कहा—भेज दूँगा। मैं मर जाऊँ तो क्या तुम्हें मेरी याद आवेगी ?

कल्याणी ने कहा—आवेगी, व्रत छोड़ने वाले अधर्मी के रूप में।

भवानन्द चल दिये। कल्याणी ने पुस्तक पढ़ने में मन लगाया।

पाँचवाँ परिच्छेद

सोचते-सोचते भवानन्द मठ की तरफ चले। चलते-चलते रास्ते में रात हो गई। साथ में कोई था नहीं, जङ्गल में अकेले दाखिल हुए। देखा, जङ्गल में एक और आदमी उनके आगे-आगे चला जा रहा है। भवानंद ने पूछा—'कौन जा रहे हो भाई ?

आगे जाने वाले आदमी ने कहा—पूछना जानते हो, तभी उत्तर देता हूँ—मैं राहगीर हूँ।

भवानंद—वन्दे।

आगे चलनेवाले आदमी ने कहा—मातरम्।

भवानन्द—मेरा नाम भवानंद गोस्वामी है।

अग्रगामी—मैं हूँ धीरानंद।

भवानन्द—धीरानन्द, कहाँ गये थे ?

धीरानन्द—आपकी ही खोज में गया था।

भवानन्द—क्यों ?

धीरानन्द—एक बात बताने के लिए।

भवानन्द—कौन सी बात है ?

धीरानन्द—एकान्त में कहने वाली बात है।

भवानन्द—यहीं कहो न, बहुत ही एकान्त स्थान है।

धीरानंद—आप शहर गये थे ?

भवानंद—हाँ।

धीरानंद—गौरीदेवी के मकान पर ?

भवानंद—तुम भी शहर गये थे क्या ?

धीरानंद—वहाँ एक बड़ी सुन्दर युवती रहती है ?

भवानन्द को कुछ आश्चर्य हुआ, कुछ भयभीत हुए। कहा—'ये सब कैसी बातें ?

धीरानन्द—आपने उससे भेंट की थी ?

भवानन्द—इसके बाद ?

धीरानंद—आप उस युवती को बहुत चाहते हैं।

भवानंद—(कुछ सोचकर) धीरानंद, क्यों इतनी खोज लो ? देखो, धीरानंद, तुम जो कुछ कह रहे हो वह सच है। तुम्हारे सिवा और कितने लोग यह बात जानते हैं ?

धीरानंद—और कोई नहीं।

भवानन्द—तो मरकर ही मैं कलङ्क से छुटकारा पा सकता हूँ।

धीरानंद—पा सकते हो ?

भवानंद—आओ तो एकान्त स्थान में दोनों निपट लें। या त तुम्हें मारकर मैं निष्कण्टक हो जाऊँ या तुम मुझे मारकर मेरी कुल जलन मिटा दो। हथियार है न ?

धीरानंद—है, खाली हाथ किसमें हिम्मत है, जो तुमसे ऐसी बात करे ? लड़ना ही अगर तुम्हारा मन है, तो जरूर लड़ूँगा। सन्तान संतान में विरोध मना है, लेकिन आत्मरक्षा के लिए किसी से भी विरोध मना नहीं। जो कहने के लिए मैं तुम्हें खोज रहा था, वह सब सुन लेने पर क्या

लड़ना अच्छा नहीं होगा ?'

भवानंद—बुरा नहीं; कहो न ।'

भवानंद ने खड्ग निकाल कर धीरानंद के कन्धे पर रक्खी जिससे धीरानंद भागे नहीं।

धीरानंद—मैं यही कह रहा था कि तुम कल्याणी से शादी कर लो।

भवानंद—कल्याणी ! यह भी जानते हो ?

धीरानंद—शादी क्यों नहीं करते हो ?

भवानंद—उसके पति है ।

धीरानंद—वैष्णव की शादी ऐसी ही होती है ?

भवानंद—वह मुँडे वैरागियों की, संतानों की शादी है तो नहीं।'

धीरानंद—संतान-धर्म क्या त्याग जाने योग्य है ? परन्तु तुम्हारे तो प्राण निकल रहे हैं। छिः ! छिः ! मेरा तो कन्धा फट गया।' सचमुच धीरानंद के कन्धे से खून गिर रहा था।

भवानंद—तुम किस मतलब से मुझे अधर्म में प्रेरित कर रहे हो ? अवश्य तुम्हारा कोई स्वार्थ है।

धीरानंद—यह कहने की भी इच्छा है। तलवार न गड़ाना, कह रहा हूँ। इस संतान-धर्म में मेरे हाड़ चूर-चूर हो गये हैं, मैं इसे छोड़कर स्त्री-संतानों का मुँह देखकर दिन पार करने के लिए बहुत व्यथित हुआ हूँ, मैं यह संतान धर्म छोड़ूँगा। लेकिन मेरे लिए घर जाकर बैठने की गुञ्जाइश है ? विद्रोही के रूप से बहुत लोग पहचानते हैं, घर जाकर बैठूँगा तो या तो सरकारी अफसर सर काटकर ले जायँगे, या संतान ही विश्वासघातक समझ कर मारकर चले जायँगे। इसलिए तुम्हें अपने रास्ते ले जाना चाहता हूँ।

भवानंद—क्यों, मुझे क्यों ले जाना चाहते हैं ?

धीरानंद—वही असली बात है। ये संतान तुम्हारे आज्ञाधीन हैं—सत्यानंद इस समय यहाँ नहीं हैं, तुम इनके नायक हो। तुम यह सेना लेकर लड़ो, तुम्हारी विजय होगी, मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है। युद्ध

जीतने पर तुम अपने नाम से राज्य की स्थापना क्यों न करो, सेना तो तुम्हारी आज्ञाकारिणी है। तुम राजा हो, कल्याणी तुम्हारी मन्दोदरी हो, मैं तुम्हारा अनुचर होकर स्त्री-पुत्रों का मुँह देखकर दिन व्यतीत करूँ और आशीर्वाद दूँ। संतान-धर्म अलत जल में डुवा दो।'

भवानंद ने आहिस्ता-आहिस्ता धीरानन्द के कन्धे से तलवार हटाई। कहा—'धीरानंद, लड़ो, मैं तुम्हें मारूँगा। मैं इन्द्रिय के वश हुआ हूँ, परन्तु विश्वास तोड़नेवाला नहीं। तुमने मुझे विश्वासघातक होने का परामर्श दिया है, स्वयं भी विश्वासघातक हो, तुम्हें मार देने पर ब्रह्महत्या नहीं होती। मैं तुम्हारी जान लूँगा...।' धीरानंद बात खत्म होते न होते साँस खींचकर भगा। भवानंद उसके पीछे नहीं चले। भवानंद कुछ देर दूसरी चिन्ता में रहे; जब उसे ढूँढ़ा तब पाया नहीं।

छठा परिच्छेद

मठ पहुँचकर और वहाँ से लौटकर भवानंद घने जङ्गल में घुस गये। उस जङ्गल में एक जगह एक पुरानी अट्टालिका का भग्नावशेष है। भग्नावशेष की ईंटों पर लता-गुल्म और काँटेदार झाड़ियाँ बहुतायत से उग आई हैं और बहुत घनी हैं। वहाँ असंख्य साँप रहते हैं। टूटे कमरों में एक कमरा कुछ कम टूटा और साफ था, भवानंद जाकर उसके ऊपर बैठे। बैठकर कुछ सोचने लगे।

भयानक अँधेरी रात। इस पर वह जङ्गल बहुत ही चौड़ा, आदमी का नामोनिशान नहीं, बहुत ही घना पेड़ों और लताओं से दुर्भेद्य, जङ्गल जानवरों के भी आने-जाने का विरोधी। विशाल, जनशून्य, अन्धकार, दुर्भेद्य, नीरव! रव में दूर बाघ की दहाड़ अथवा अन्य वन्य जन्तु का, भूख, डर या किसी प्रकार का शब्द। कदाचित् किसी बड़े पक्षी के पङ्ख फड़फड़ाने का शब्द, कदाचित् खेदे हुए और खेदनेवाले, वाध्य और वधधारी पशुओं का द्रुत गमन-शब्द। उस एकान्त अँधेरे में टूटी अट्टालिका पर बैठे हुए अकेले भवानंद उनके लिए उस समय जैसे पृथ्वी नहीं है, अथवा केवल उपादानमयी होकर हो। उस समय भवानंद सिर

पर हाथ रक्खे, सोच रहे थे। हिल नहीं रहे थे, साँस नहीं चल रही थी, डर नहीं था, बड़ी गहरी चिन्ता में मग्न थे। मन ही मन कह रहे थे—'जो भवितव्य है, वह जरूर होगा। मैं भागीरथी की तरङ्गों में क्षुद्र गज की तरह इन्द्रिय के बहाव में बह गया, यही मुझे दुःख है। क्षणमात्र में शरीर नष्ट हो सकता है—शरीर के नाश के साथ इन्द्रिय का भी नाश है, मैं उसी इन्द्रिय के वश हुआ। मेरे लिए मृत्यु अच्छी है। धर्म-त्यागी! छिः मरूँगा!' ऐसे समय उल्लू ने सर पर गम्भीर ध्वनि की। भवानन्द तब मुक्त कण्ठ से कहने लगे—'वह कैसा शब्द? कानों में ऐसा पहुँचा, जैसे यम मुझे बुला रहे हैं। मैं नहीं जानता। किसने आवाज की, किसने मुझे पुकारा, किसने मुझे विधि बताई, किसने मरने के लिए कहा। हे पुण्यमयि अनन्ते! तुम शब्दमयी हो, लेकिन तुम्हारे शब्द का मर्म तो मैं नहीं समझ रहा। मेरी धर्म में मति लगाओ, मुझे पाप से विरत करो। धर्म में हे गुरुदेव, धर्म में जैसे मेरी मति रहे।'

तब उस भीषण जङ्गल के भीतर से बहुत ही मधुर, फिर भी गम्भीर, मर्मभेदी मनुष्य-कण्ठ सुनाई पड़ा; किसी ने कहा—'धर्म में तुम्हारी मति रहेगी, मैंने आशीर्वाद दिया।

भवानन्द का शरीर रोमाञ्चित हुआ। यह क्या! यह तो गुरुदेव का कण्ठ-स्वर है। 'महाराज, आप कहाँ हैं? इस समय दास को दर्शन दीजिए।'

लेकिन किसी ने दर्शन नहीं दिया—किसी ने जवाब नहीं दिया। भवानन्द ने बार-बार पुकारा, लेकिन जवाब नहीं मिला। इधर-उधर खोजा, कहीं कोई नहीं था।

जब रात बीती, प्रातः का सूर्य बड़े जङ्गल की पत्तोंवाली साँवली चोटी पर किरणें फैलाने लगा, तब भवानन्द मठ में आकर हाजिर हुए। कानों में सुनाई दिया—'हरे मुरारे!' हरे मुरारे! पहचाना, सत्यानन्द का कण्ठ-स्वर है! समझे, प्रभु लौटकर आये हैं।

सातवाँ परिच्छेद

जीवानन्द के कुटी से बाहर निकल जाने पर, शान्तिदेवी फिर सरङ्गी लेकर मधुर-मधुर सङ्गीत छेड़ने लगीं—

'प्रलय-पयोधि-जले धृतवान सिवेदं
विहित-विचित्र-चरित्रमखेदम्
केशव, धृत-मीनशरीर,
जय जगदीश हरे !'

गोस्वामी का रचा हुआ मधुर स्तोत्र जब शांतिदेवी के कण्ठ से निकलकर, राग, ताल और लय से पूर्ण होकर, उस अनन्त जङ्गल की अनन्त नीरवता को चीरता हुआ पूरे जलोच्छ्वास के समय वसन्त की हवा से ताड़ित तरङ्ग-भङ्ग की तरह मधुर हो आया, तब उन्होंने गाया—

'निन्दसि यज्ञविधेरह श्रुतिजातं
सदय-हृदय-दर्शित-पशुघातम
केशव, धृत-बुद्धशरीर,
जय जगदीश हरे !'

तब बाहर से किसी ने बड़े गम्भीर स्वर से गाया, गम्भीर मेघगर्जन-जैसी तान से गाया—

'म्लेच्छनिवह निधने कलयसि करवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालम्,
केशव, धृत-कल्किशरीर,
जय जगदीश हरे !'

शांति ने भक्तिभाव से प्रणत होकर सत्यानन्द की पदधूलि ली; कहा—'प्रभो, मैंने ऐसा कौन-सा भाग्य पाया है कि आपके श्रीपादपद्मों के यहाँ दर्शन पाऊँ—आज्ञा दीजिए, मुझे क्या करना होगा !' इतना कहकर

सरङ्गी में स्वर भर कर फिर गाया—

'तव चरणप्रणता वनमिति भावय कुरु कुशलं प्रणतेषु ।'

सत्यानन्द ने कहा—'माँ, तुम्हारा कुशल ही होगा।'

शांति—'किस तरह, महाराज ? तुम्हारी तो आज्ञा है, मेरा वैधव्य !'

सत्यानन्द—तुम्हें मैं पहचानता नहीं था। माँ, रस्सी की ताकत समझे बिना मैंने उसे ज्यादा खींचा, तुम मुझसे भी ज्ञानी हो, इसका उपाय तुम करो, जीवानन्द से यह न कहना कि मैं सब जानता हूँ। तुम्हारे प्रलोभन से वे प्राण बचा सकते हैं, अब तक बचाये हुए हैं, इस प्रकार मेरा काम बन सकता है।'

उन बड़ी-बड़ी खिली नीली आँखों में गरमी के मेघ में रही बिजली की तरह कड़े कटाक्ष हुए। शांति ने कहा—'क्यों महाराज, मैं और मेरे पति एक आत्मा हैं; तुमसे जो-जो बातचीत हुई, सब कहूँगी। मरना होगा वे मरेंगे, मेरी क्या हानि ? मैं तो साथ ही साथ मरूँगी। उनका स्वर्ग है, क्या सोचते हो—मेरा स्वर्ग नहीं !

ब्रह्मचारी ने कहा—'मैं कभी हारा नहीं, आज तुम्हारे पास हारा। माँ, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, पुत्र पर स्नेह करो, जीवानन्द के प्राण बचाओ, अपने प्राण बचाओ; मेरा काम बन जायगा।'

बिजली हँसी। शान्ति ने कहा—'मेरे पति का धर्म मेरे पति के हाथ में है। मैं उन्हें धर्म से विरत करने वाली कौन हूँ ? पति स्त्री का इसी लोक में देवता है, परलोक में सबका देवता धर्म है। मेरे पास मेरे पति बड़े हैं, उनसे बड़ा मेरा धर्म है, इसकी अपेक्षा मेरे पास मेरे पति का धर्म बड़ा है। अपने धर्म को, मेरी जिस दिन इच्छा होगी तिलांजलि दे सकती हूँ, लेकिन अपने पति के धर्म में भी तिलांजलि दूँ ? महाराज ! तुम्हारी बात पर मेरे पति को मरना होगा, मरेंगे, मैं रोकूँगी नहीं।'

ब्रह्मचारी तब लम्बी साँस लेकर बोले—'माँ, इस महान् व्रत में बलिदान है। हम सभी को अपनी बलि देनी होगी। मैं मरूँगा, जीवानंद, भवानन्द सभी मरेंगे, शायद माँ, तुम भी मरोगी, लेकिन देखो, काम करके मरना होगा, बिना काम किये क्या मरना अच्छा है !— मैंने सिर्फ

देश को माँ कहा है, और किसी को माँ नहीं कहा, क्योंकि सुजला सुफला धरणी को छोड़कर हम और माँ नहीं मानते। और तुम्हें माँ कहा। तुम माँ होकर संतानों का काम करो, जिससे काम बने, वह करना, जीवानन्द के प्राण बचाना, अपने प्राण रखना।'

इतना कहकर सत्यानन्द 'हरे मुरारे मधुकैटभारे' गाते हुए चल दिये।

आठवाँ परिच्छेद

धीरे-धीरे संतानों में यह खबर फैल गई कि सत्यानन्द आये हैं, सन्तानों से कुछ बातचीत करेंगे, इसलिए उन्होंने सबको बुलाया है। तब दलों में संतान आ आकर इकट्ठे होने लगे। चाँदनी रात में, नदी के किनारे, एक बड़े जङ्गल में, आम, कटहल, ताड़, इमली, पीपल, बेल, बरगद और सेमर आदि पेड़ों से शोभित गहन जङ्गल में दस हजार संतान एकत्र हुए। सब लोग एक दूसरे के मुँह से सत्यानन्द के आने की बात सुनकर महा कोलाहल करने लगे। सत्यानन्द किस लिए कहाँ गये थे, यह साधारण जनों को मालूम नहीं था। खबर यह थी कि वे संतानों के कल्याण के लिए हिमालय पर तपस्या करने गये थे।

आज सब लोग कानों में बतलाने लगे—'महाराज की तपस्या में सिद्धि हुई है, हम लोगों का राज्य होगा। तब बड़ा कोलाहल मच गया, कोई-कोई ऊँची-ऊँची आवाज लगाकर कहने लगे—'मार-मार, पापी को मार।' किसी-किसी ने कहा—'जय, जय, महाराज की जय!' किसी-किसी ने गाया—'हरे मुरारे मधुकैटभारे!' किसी-किसी ने गाया—'वन्दे मातरम्! किसी ने कहा—'भाई, ऐसा भी दिन होगा कि तुच्छ बङ्गाली होकर मैदानेजङ्ग में हम जान देंगे?' किसी ने कहा—'भाई, ऐसा भी दिन होगा कि मसजिदें तोड़कर हम राधामाधव के मन्दिर बनायेंगे?' किसी ने कहा—'भाई, ऐसा दिन क्या आयेगा कि अपना धन हम आप खायँगे? दस हजार आदमियों के गले का कलकल-रव मधुर हवा से ताड़ित पल्लव-राशियों का मर्मर, बालू के ऊपर बहने वाली नदी का मधुर तर-तर रव, नीले आकाश के चाँद तारे—सफेद बादल साँवली पृथ्वी के

हरे-भरे जङ्गल, स्वच्छ नदी, श्वेत सैकत, खिले फूल, और बीच-बीच में वह सब आदमियों के मन में बसानेवाले 'वन्दे मातरम्!' सत्यानन्द उस एकत्र हुई जन-मण्डली के बीच में आकर खड़े हुए। तब वे दस हजार संतानों के सिर वृक्षों के छेदों से आती हुई चाँद की किरणों में चमकते हुए साँवली तृणभूमि में प्रणत हुए। बहुत ही ऊँचे स्वर से, दोनों बाँहें उठाकर सत्यानन्द ने कहा—'शङ्ख चक्र गदा-पद्मधारी वनमाली, वैकुण्ठनाथ जो केशिमथन हैं, मधु-मुर-नरकमर्दन, लोकपालन, वे तुम्हारा मङ्गल करें, वे तुम्हारी बाँहों में बल दें, मन में भक्ति दें, धर्म में मति दें, तुम एक बार उनकी महिमा गाओ।' तब हजारों कण्ठों से ऊँचे-ऊँचे स्वर से गाया जाने लगा—

'जय जगदीश हरे!
प्रलय-पयोधि-जले धृतवानसि वेदं
विहित-विचित्र-चरित्रमखेदम्,
केशव-धृत मीनशरीर,
जय जगदीश हरे!'

सत्यानन्द उन्हें फिर आशीर्वाद देकर बोले—'हे सन्तानो, तुम्हारे साथ आज मेरी विशेष बात है। टामस नाम के एक विधर्मी दुरात्मा ने बहुत-से संतानों के प्राण लिये हैं। आज रात को हम लोग उसे, उसकी सेना के साथ, यमपुरी भेजेंगे। ईश्वर की आज्ञा है—तुम लोग क्या कहते हो?'

भीषण हरिध्वनि से कानन विदीर्ण हो गया। 'अभी मारेंगे, कहाँ हैं वे लोग, चलो दिखा दो।' 'मार, मार! शत्रु को मार!' आदि-आदि शब्द दूर की पहाड़ी से टकराये। तब सत्यानन्द ने कहा—'इसके लिए हम लोगों को कुछ धैर्य रखना पड़ेगा। शत्रु के पास तोपें हैं—तोपों के बिना उनसे लड़ाई सम्भव नहीं। खास तौर से वे वीर-जाति हैं। पदचिह्न के दुर्ग से सत्रह तोपें आ रही हैं। तोपें पहुँच जाने पर हम लोग लड़ाई के लिए चलेंगे। वह देखो, सवेरा हो रहा है। दिन चार पहर चढ़ते ही—वह क्या है…।'

'घड़ाम्-घड़ाम' अकस्मात् विशाल जङ्गल के चारों तरफ तोपों की आवाज होने लगी। तोपें अङ्गरेजों की हैं। जाल में पड़ी मछलियों की तरह संतानों को इस ग्राम के जङ्गल में घेरकर कैप्टेन टामस ने भून डालने का निश्चय किया है।

नवाँ परिच्छेद

'घड़ाम्-घड़ाम्' अङ्गरेजों की तोपों की आवाज हुई। वह आवाज विशाल जङ्गल को कम्पित कर प्रतिध्वनित हुई।' घड़ाम्-घड़ाम्।' नदी के बाँधों पर चक्कर काटती हुई ध्वनि दूर के आकाश-प्रान्त से टकराई 'घड़ाम्-घड़ाम्। सत्यानन्द ने आज्ञा दी—तुम लोग देखो, कैसी तोपें हैं?' कुछ संतान उसी समय घोड़ों पर सवार होकर देखने दौड़े, लेकिन जङ्गल से निकलकर कुछ दूर जाते ही सावन की धारा की तरह उन पर गोले-बारूद गिरने लगे। घोड़ों के साथ उन सबों ने घायल होकर जान गँवाई। दूर से सत्यानन्द ने देखा। कहा—'ऊँचे पेड़ पर चढ़कर देखो, क्या है? उनके कहने के पहले ही जीवानन्द पेड़ पर चढ़कर प्रभात की किरणों में देख रहे थे। पेड़ की ऊपर वाली शाखा से पुकार कर उन्होंने कहा—'तोप अङ्गरेजों की हैं।' सत्यानन्द ने पूछा—'अश्वारोही हैं या पैदल?'

जीवानंद—'दोनों हैं।'

सत्यानन्द—'कितने हैं?'

जीवानन्द—'अन्दाजा नहीं लगा पा रहा हूँ। अब भी जङ्गल की आड़ से निकल रहे हैं।'

सत्यानन्द—'गोरे हैं या सिर्फ सिपाही?'

जीवानन्द—'गोरे हैं।'

फिर सत्यानन्द ने जीवानन्द से कहा—'तुम पेड़ से उतरो।'

जीवानंद पेड़ से उतरे।

सत्यानंद ने कहा—'दस हजार संतान मौजूद हैं, क्या कर सकते हो,

देखो। आज तुम सेनापति हो।' जीवानन्द अस्त्रों से सुसज्जित होकर छलाँग मारकर घोड़े की पीठ पर सवार हो गया। एक बार नवीनानंद गोस्वामी की ओर निगाह कर इशारे से क्या कहा कोई समझ नहीं पाया। नवीनानंद ने आँख के इशारे से क्या उत्तर दिया, वह भी कोई नहीं समझा, केवल वही दोनों अपने-अपने मन में समझे कि शायद इस जन्म के लिए विदा है। फिर नवीनानंद ने दाहिनी भुजा उठाकर सबसे कहा—'भाई, इस वक्त गाओ, 'जय जगदीश हरे!' तब वे दस हजार संतान समस्वर से नदी, जङ्गल और आकाश को प्रतिध्वनित कर, तोपों की गरज को डुबाकर, हजारों बाहें उठाकर गाने लगे—

'जय जगदीश हरे!
म्लेच्छनिवह-निधने कलयसि करवालम्।'

इसी समय अङ्गरेजों के गोले आकर जङ्गल में संन्तान-सम्प्रदाय पर पड़ने लगे। गाते-गाते किसी का सर उड़ गया, किसी का हाथ गायब हो गया, किसी की छाती के फूफत निकल गये, वह वहीं ढेर हो गया, फिर भी किसी ने गाना बन्द नहीं किया। सब गाते गये—'जय जगदीश हरे!'

गाना खत्म होने पर एक बार सब स्तब्ध हो गये। वह घना जङ्गल, वह नदी का बालू, वह अनन्त एकान्त साथ गहरी चुप में घनीभूत हो गया, सिर्फ वह भयङ्कर तोपों की ध्वनि होती रही और दूर से सुनाई पड़ने वाली गोरों के इकट्ठा किये अस्त्रों की झनकार और पैरों की आवाज।

फिर सत्यानंद ने उस गहरी निस्तब्धता में बहुत ही ऊँचे स्वर से कहा—'जगदीश ने तुम पर कृपा की, तोपें कितनी दूर हैं?'

ऊपर से एक आदमी ने कहा—'इस जङ्गल के बहुत पास, केवल एक छोटे मैदान के उस पार।'

सत्यानंद ने पूछा—'तुम कौन हो?'

ऊपर से उत्तर—'आया मैं नवीनानंद हूँ।'

फिर सत्यानंद ने कहा—'तुम दस हजार संतान हो, आज तुम्हारी विजय होगी; तोपें छीन लो!'

आगे के अश्वारोही जीवानन्द ने कहा—'आओ !'

वे दस हजार संतान—घुड़सवार और पैदल बड़े वेग से जीवानन्द के पीछे चले। पैदल के कन्धे पर बन्दूक, कमर में तलवार, हाथ में बल्लम। जङ्गल से निकलते ही वह गालों को वर्षा उन्हें छिन्न-भिन्न करने लगी। बहुत से सन्तान बिना लड़ाई के मैदान में काम आ गये। एक ने जीवानन्द से कहा—'जीवानन्द, व्यर्थ की प्राण-हत्या से क्या होगा ?'

जीवानन्द ने फिरकर देखा, भवानन्द थे। जीवानद ने पूछा—'तुम क्या करने के लिए कहते हो ?'

भवानंद—'जङ्गल के भीतर रहकर पेड़ों की आड़ से हम अपनी जान बचायें, तोपो के सामने, खुले मैदान में, बिना तोपों के यह सन्तान-सेना एक क्षण नहीं टिकेगी; लेकिन पेड़ो की आड़ से बहुत देर तक लड़ाई लड़ी जा सकेगी।'

जीवानंद—'आपने ठीक कहा है, लेकिन प्रभु ने आज्ञा दी है, तोपें छीन लेनी होंगी, इसलिए हम लोग तोपें छीनने के लिए बढ़ेंगे।'

भवानंद—किसकी हिम्मत जो तोपें छीन ले ? लेकिन अगर जाना ही है, तो तुम निरस्त्र हो, मैं जाता हूँ।'

जीवानन्द—'यह नहीं होगा, भवानंद, आज मेरे मरने का दिन है।'

भवानंद—'आज मेरे मरने का दिन है।'

जीवानंद—'मुझे प्रायश्चित्त करना है।'

भवानंद—'तुम्हारा शरीर निष्पाप है, तुम्हारा प्रायश्चित्त नहीं। मेरा चित्त कलुषित है, मुझे ही मरना होगा। तुम रहो, मैं जाता हूँ।'

जीवानंद—भवानन्द तुम्हारा क्या पाप है, मैं नहीं जानता, लेकिन आप रहोगे तो संतानों का कार्योद्धार होगा। मैं जाता हूँ।

थोड़ी देर चुप रहकर आखिर में भवानंद ने कहा—मरने की जरूरत होगी तो आज ही मरूँगा; जिस दिन मरने की जरूरत होगी उसी दिन मरूँगा, मरने के लिए समय असमय क्या ?

जीवानन्द—तो आओ।

इतनी बात के बाद भवानन्द सबसे आगे हुए। फिर गोलों के दल के दल, झुण्ड के झुण्ड, सन्तानो की सेना पर गिरकर उसके टुकड़े-टुकड़े करने लगे, चीरकर निकलने लगे, उलट कर चले जाने लगे, इस पर

दुश्मन के बन्दूक वाले सिपाही अव्यर्थ लक्ष्य से संतानों की कतार की कतार धरती पर सुलाने लगे। ऐसे समय भवानन्द ने कहा—इस तरङ्ग में आज संतानों को कूदना है, भाइयो, कौन कौन कूद सकते हो? इस समय गाओ—'वन्दे मातरम्!' फिर ऊँचे कण्ठ स्वर से, मेघमल्लार राग में, हजारों कण्ठों से सन्तान सेना तोपों की ताल पर गाने लगी—वन्दे मातरम्।

दसवाँ परिच्छेद

वे हजार सन्तान से 'वन्दे मातरम्' गाते हुए बल्लम उठाकर बहुत द्रुत वेग से तोपों पर जा पड़े। गोलों की मारों से टुकड़े टुकड़े होकर, उखड़कर बहुत ही विश्रृङ्खल हो गये, फिर भी सन्तानों की सेना लौटी नहीं। उसी समय कैप्टेन टामस की आज्ञा से सिपाहियों के एक दल ने बंदूक पर सङ्गीन चढ़ाकर प्रबल वेग से संतानों के दक्षिण पार्श्व पर आक्रमण किया। दोनों तरफ से आक्रान्त होकर सन्तान सेना बिलकुल निराश हो गई। प्रतिमुहूर्त सैकड़ों सन्तान काम आने लगे। तब जीवानन्द ने कहा—भवानन्द, तुम्हारी बात सही है, अब वैष्णवों के नाश की जरूरत नहीं; हम लोग धीरे धीरे लौट चलें।

भवानन्द—अब किस प्रकार लौटोगे? इस समय जो पीछे घूमेगा, वही मरेगा।

जीवानन्द—सामने और दाईं तरफ से आक्रमण हो रहा है। बाईं तरफ कोई नहीं, चलो धीरे धीरे घूमकर बाईं तरफ से घेरकर निकल जायँ।

भवानंद—निकलकर कहाँ जाओगे? वहाँ नदी जो है, नई वर्षा से नदी बहुत प्रबल हो गई है। तुम अङ्गरेजों के गोलों से भागकर इस संतान सेना को नदी में डुबाओगे?

जीवानंद—मुझे याद आ रहा है, नदी पर एक पुल है।

भवानंद—यह दस हजार सेना उस पुल से पार कराते इतनी भीड़ होगी कि मेरा खयाल है, एक तोप आसानी से कुल सेना को भून डालेगा।

जीवानन्द—'एक काम करो, थोड़ी सेना तुम अपने साथ रक्खो। इस लड़ाई में तुमने जो हिम्मत और चतुराई दिखाई है, तुम्हारा असाध्य

कुछ भी नहीं। तुम वह अल्पसंख्यक सेना लेकर सामना बचाओ। मैं तुम्हारी सेना की ओट से बाकी सन्तानों को पुल पार करा ले जाऊँ। तुम्हारे साथ जो लोग रहें, वे अवश्य काम आयेंगे। मेरे साथ जो रहें, वे बचें तो बच सकते हैं।'

भवानन्द—'अच्छा, मैं वैसा ही करता हूँ।'

फिर भवानन्द ने दो हजार संतान लेकर, 'वन्दे मातरम्' की आवाज उठाकर, बड़े उत्साह से अङ्गरेजों की गोलन्दाज सेना पर हमला किया। वहाँ घमासान लड़ाई होने लगी। लेकिन तोपों के सामने मामूली सन्तान-सेना कितनी देर ठहरती, कटे धानों की तरह गोलन्दाज उन्हें धराशायी करने लगे।

इस मौके पर जीवानन्द बाकी सन्तान-सेना का मुँह कुछ फेर कर बाईं तरफ से जङ्गल का चक्कर लगाते हुए धीरे-धीरे चले। कैप्टेन टामस के एक सहयोगी लेफ्टीनैण्ट वाटसन ने दूर से देखा कि सन्तानों का एक दल धीरे-धीरे भागा जा रहा है, तब वे एक दल फौजी सिपाहियों का और एक दल परगना-सिपाहियों का लेकर जीवानन्द के पीछे लग गये।

कैप्टेन टामस ने यह देखा। उन्होंने कैप्टेन के नाम के एक सहयोगी से कहा—'मैं दो चार सौ सिपाही लेकर सामने के इन उखड़े बागियों का काम तमाम करता हूँ, तुम तोप और बाकी सिपाहियों को लेकर उन लोगों की तरफ दौड़ जाओ, बाईं तरफ से लेफ्टीनैण्ट वाटसन जा रहे हैं, तुम दाईं तरफ से जाओ। और देखो, बढ़कर पुल का मुँह बन्द करना होगा, तो तीन तरफ से उन लोगों को घेर कर जाल की चिड़ियों की तरह उन्हें मार सकोगे। वे देशी फौज के आदमी भागते बहुत हैं, भागने में ही चतुर हैं। इसलिए आसानी से ही तुम उन्हें पकड़ नहीं पाओगे, तुम सवारों को तनिक छिपकर चक्करदार रास्ते से बढ़कर पुल के मुँह पर खड़े होने के लिए कहो, तो काम बन जायगा।'

कैप्टेन हे ने उसी तरह किया।

'अति दर्पे हता लङ्का' कैप्टेन टामस ने सन्तानों को बहुत मामूली समझकर, केवल दो सौ पैदल भवानन्द के मुकाबले के लिए रखकर, बाकी कुल सिपाहियों को हे के साथ रवाना कर दिया। चतुर भवानन्द

ने जब देखा, अङ्गरेजों की सब तोपें चली गईं, सब सेना चली गई, जो थोड़े से सिपाही रह गये, वे आसानी से ही मार लिये जायँगे, तब अपने बचे हुए आदमियों को बुलाकर उन्होंने कहा—'उन कुल आदमियों को मारकर मुझे जीवानन्द की मदद के लिए जाना है। एक बार और तुम लोग 'जय जगदीश हरे' कहो।'

तब वह अल्पसंख्यक सन्तान सेना 'जय जगदीश हरे' कहकर बाघ की भाँति कैप्टेन टामस पर टूट पड़ी। उस आक्रमण की उग्रता तिलंगे सिपाही सह नहीं सके, वे काम आये। भवानन्द ने तब बढ़कर कैप्टेन टामस के बाल पकड़ लिये। आखिर तक कैप्टेन लड़ते रहे। भवानन्द ने कहा—'कप्तान साहब, तुम्हारे प्राण नहीं लूँगा, अङ्गरेज हमारे दुश्मन नहीं। तुम मुसलमानों के मददगार होकर क्यों आये हो? अच्छा, तुम्हें मैंने प्राणदान दिया, लेकिन इस वक्त तुम बन्दी हो। अङ्गरेजों की जय हो, हम तुम्हारे दोस्त हैं।'

भवानंद के प्राण लेने के लिए कैप्टेन टामस ने सङ्गीन लगी बन्दूक उठाने की चेष्टा की लेकिन भवानंद ने उसे बाघ की तरह पकड़ा था, कैप्टेन टामस हिल डुल नहीं सका। तब भवानंद ने अनुचरों से कहा—'इसे बाँधो।' दो-तीन संतान आये और कैप्टेन टामस को बाँध लिया। भवानंद ने कहा—'इसे एक घोड़े पर चढ़ा लो, चलो, इसे लेकर हम लोग जीवानंद गोस्वामी की सहायता के लिए चलें।'

फिर वे अल्पसंख्यक संतान कैप्टेन टामस को बाँध कर घोड़े पर लेकर 'वन्दे मातरम्' गाते हुए वाटसन की तरफ दौड़ चले।

जीवानंद की संतान सेना की हिम्मत टूट गई थी। वह भगने पर तुली थी। जीवानंद और धीरानन्द ने उसे समझाकर संयत किया, लेकिन सब को नहीं कर सके, कुछ भाग कर आम के जङ्गल में ठहरी। शेष सेना को जीवानंद और धीरानंद पुल के मुख पर ले गये। लेकिन वहाँ हे और वाटसन ने दोनों ओर से घेर लिया; अब बचने का रास्ता नहीं रहा।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

ऐसे वक्त पर टामस की तोपें दाईं तरफ आकर पहुँचीं। तब संतानों के दल बिलकुल कट-छँट गये, किसी के बचने की कुछ भी उम्मीद नहीं

रही। संतानों में जिससे जिधर बन पड़ा, भागने लगा। जीवानन्द और धीरानन्द ने लोगों को संयत और एकत्र करने के बड़े प्रयत्न किये, पर किसी प्रकार नहीं कर सके। उसी वक्त ऊँचा स्वर सुन पड़ा—'पुल पर जाओ, पुल पर जाओ, उस पार जाओ। नहीं तो नदी में डूब कर मरोगे, आहिस्ता-आहिस्ता अङ्गरेजों की सेना की तरफ मुँह करके पुल पर चले जाओ।'

जीवानन्द ने देखा, सामने भवानन्द खड़े थे। भवानन्द ने कहा—'जीवानन्द, पुल पर ले जाओ, बचाव नहीं।' तब आहिस्ता-आहिस्ता हटती-हटती संतान सेना एक साथ पुल पर चढ़े कि अङ्गरेजों की तोपों को सुयोग मिला, गोले एक साथ पुल बहारने से लगे। संतानों का दल नष्ट होने लगा। भवानन्द, जीवानन्द, धीरानन्द एक स्थान पर थे। एक तोप के अत्याचार से भयङ्कर रूप से संतानों का नाश हो रहा था। भवानन्द ने कहा—'जीवानन्द, धीरानन्द आओ, तलवार के जोर पर हम तीनों इस तोप पर अधिकार करें। तीनों ने तलवार निकाल कर उस तोप पर हमला किया; पास के गोलन्दाजों का काम तमाम कर दिया। तब दूसरे संतान उनकी सहायता के लिए बढ़े। तोप पर भवानन्द का अधिकार हो गया। तोप पर अधिकार करके भवानन्द उस पर चढ़ कर खड़े हो गये, ताली बजाते हुए कहा—'कहो, वन्दे मातरम्!'

सबने गाया 'वन्दे मातरम्!'

भवानन्द ने कहा—'जीवानन्द, यह तोप घुमाकर इन बेटों को पूड़ी का मैदा तैयार करें।'

संतानों ने पकड़ कर तोप घुमाई। तब तोप उच्च नाद से वैष्णवों के कानों में जैसे हरि शब्द से पुकारने लगी। बहुतेरे सिपाही उससे मर गये और मरने लगे। भवानन्द ने वह तोप खींच कर पुल के मुँह पर लगा कर कहा—'तुम दोनों, संतानों की सेना को कतार में पुल पार करा ले जाओ, मैं अकेला व्यूह का मुँह रख रहा हूँ—तोप चलाने के लिए मेरे पास कुछ गोलन्दाज दे जाओ।'

बीस चुने हुए संतान भवानन्द के पास रह गये।

उधर असंख्य संतान जीवानन्द और धीरानन्द की आज्ञा के अनुसार

कतार बाँध कर पुल पर से उस पार जाने लगे। अकेले भवानन्द ने बीस संतानों की मदद से उसी एक तोप से बहुत-सी सेना भून डाली। लेकिन मुसलमानों की सेना ज्वार की उठती तरङ्गों की तरह थी। तरङ्ग पर तरङ्ग, तरङ्ग पर तरङ्ग। भवानन्द को घेरकर उत्पीड़ित कर डुबाती हुई-सी मालूम देने लगी। भवानन्द अश्रान्त, अजेय, निर्भीक है—तोप की आवाज आवाज पर कितनी सेना विनष्ट करने लगे। मुसलमान आँधी से पीड़ित तरङ्गों की तरह उन पर चोटें करने लगे, लेकिन बीस संतान तोप लिये हुए पुल का मुँह बन्द किये रहे। वे मर कर भी नहीं मरते, मुसलमान पुल पर चढ़ नहीं पाते। वे वीर अजेय हैं, वह जीवन अविनश्वर है। अवसर प्राप्त कर संतानों की सेना के दल के दल पुल के उस पार गये और कुछ देर पुल की रक्षा होने पर ही कुल संतान पुल के उस पार चले जायँ—ऐसे समय कहाँ से तोप गरजी—अररर धम्।' दोनों दल वालों ने कुछ देर लड़ाई बन्द करके आँख उठाकर देखा—यह तोप किसकी है! देखा, जङ्गल के भीतर से कुछ तोपें देशी गोलन्दाजों से दागी जाकर बाहर घसीटी जा रही हैं। निकल कर वे बड़ी-बड़ी सत्रह तोपें सत्रह मुँहों से धुँआँ उगलती हुई हे साहब की सेना पर आग बरसाने लगीं। घोर शब्द से जङ्गल, पहाड़ सभी कुछ प्रतिध्वनित हुआ। सारे दिन की लड़ाई से थकी हुई मुसलमान सेना प्राणों के डर से काँपी। आग की वर्षा से तिलंगे, मुसलमान, हिन्दुस्तानी भागने लगे। केवल दो-चार गोरे सीधे खड़े हुए मरने लगे।

भवानन्द खड़े तमाशा देख रहे थे, कहा—भाइयो, मुसलमान भाग रहे हैं आओ एक बार इन पर हमला करें। तब चींटियों की कतारों की तरह, संतानों के दल नये उत्साह से पुल के इस पार आ-आकर मुसलमानों पर हमला करने को दौड़ पड़े। वे लोग एकाएक मुसलमानों पर टूटे। मुसलमानों को लड़ने का मौका नहीं मिला, जैसे भागीरथी तरङ्ग उस दम्भी बृहत् पर्वताकार मत्त हाथी को बहा ले गई थी, संतान वैसे ही मुसलमानों को बहा ले चले। मुसलमानों ने देखा, पीछे भवानन्द की पैदल सेना है, सामने महेंद्र का तोपें। हे साहब का सर्वनाश आ पहुँचा। कुछ भी नहीं टिका—शक्ति, वीरता, साहस, कौशल, शिक्षा, दम्भ, सब बह गया। फौजदारी, बादशाही, अङ्गरेजी, देशी, काले, गोरे, सब सैनिक धरती

घूमने लगे ! विधर्मियों का दल भागा । 'मार-मार' शब्द से जीवानन्द, धीरानन्द विधर्मी सेना के पीछे दौड़े । उनकी तोपें सन्तानों ने छीन लीं । बहुत से अङ्गरेज और सिपाही काम आये । सब खेल बिगड़ गया देखकर कैप्टेन हे और वाटसन ने भवानन्द के पास कहला भेजा—हम सब तुम्हारे हाथ गिरफ्तार हो रहे हैं । अब और जानें न मारो ।' जीवानन्द ने भवानन्द के मुँह की ओर देखा । भवानन्द ने मन में कहा—यह नहीं होगा, मुझे मरना होगा । तब भवानन्द ने हाथ उठाकर, ऊँचे स्वर से 'हरि बोल' कहते हुए कहा—मारो-मारो !

इसके बाद एक जान नहीं बची । एक जगह बीस तीस गोरे इकट्ठे होकर जान हथेली पर लिये भयङ्कर युद्ध कर रहे थे । जीवानन्द ने कहा--भवानन्द, हमारी जीत हुई है, अब रहने दिया जाय, इन कुछ आदमियों के अलावा और कोई जीता नहीं, इन्हें जीवनदान देकर चलो, हम लोग लौट चलें ।

भवानन्द ने कहा--एक आदमी के बचे रहते भवानन्द नहीं लौटेगा । जीवानंद, तुम्हें शपथ लेकर कहता हूँ, तुम दूर खड़े हुए देखो, मैं इन अङ्गरेजों को कैसे तलवार के घाट उतारकर यमपुरी पहुँचाता हूँ ।

कैप्टेन टामस घोड़े की पीठ पर बँधा हुआ था । भवानंद ने आज्ञा दी--उसे मेरे सामने रक्खो, पहले वह काम आयेगा तब मैं मरूँगा ।

कैप्टेन टामस बँगला भाषा समझता था । समझकर अँगरेज सेना से कहा—अङ्गरेजो, मैं तो मर चुका हूँ; तुम लोग प्राचीन इङ्गलैण्ड का नाम रखना, तुम्हें ईसामसीह की कसम देता हूँ; पहले मुझे मारो, इसके बाद विद्रोही को मारो ।

'भन्न'—से एक बुलेट आई, एक आयरिश मैन ने कैप्टेन टामस पर गोली छोड़ी । गोली माथे पर लगी । कैप्टेन टामस मर गये । भवानंद ने तब पुकार कर कहा—मेरा ब्रह्मास्त्र बेकार हो गया है कौन ऐसा पार्थ वृकोदर, नकुल, सहदेव है जो इस समय मेरी रक्षा करे ? देखो, बाणाहत बाघों की तरह गोरे इस समय मुझ पर झुके हैं ! मैं मरने के लिए आया हूँ, मेरे साथ मरना चाहते हो, ऐसे सन्तान कितने हैं ?

पहले धीरानन्द बढ़ा, पीछे जीवानन्द, साथ और दस, पन्द्रह, बीस, पचास संतान आये । भवानंद धीरानंद को देखकर बोले—तुम क्या हमारे

साथ मरने के लिए आये हो!

धीरानन्द—क्यों, मरने में भी किसी का इजारा है! यह कहते हुए धीरानन्द ने एक गोरे को घायल किया।

भवानन्द—यह नहीं, मरने पर स्त्री पुत्रों के मुँह देखकर तो दिन नहीं काट सकोगे!

धीरानन्द—'कल की बात कह रहे हो! अभी तक नहीं समझे!' (धीरानन्द ने घायल गोरे का वध किया।)

भवानन्द—'नहीं।' (इस समय एक गोरे के वार से भवानन्द का दायाँ हाथ कट गया।)

धीरानन्द—'मेरी क्या हस्ती जो तुम्हारे जैसे पवित्रात्मा से सब बातें कहूँ! मैं सत्यानन्द का भेजा हुआ चर होकर गया था।'

भवानन्द—'यह क्या! मुझ पर महाराज का अविश्वास!' भवानंद तब एक हाथ से लड़ रहे थे। धीरानन्द ने उन्हें बचाते हुए कहा—'कल्याणी से बातचीत हुई थी, वे सब उन्होंने अपने कानों से सुनी हैं।'

भवानन्द—'किस प्रकार!'

धीरानन्द—'वे खुद वहाँ थे। होशियार रहना!'

भवानन्द एक गोरे से घायल हुए, फिर उसे घायल किया। भवानंद का बायाँ हाथ कट गया।

भवानन्द—मेरी मौत की खबर उन्हें देना। कहना, मैं अविश्वासी नहीं।'

धीरानन्द के नेत्रों में जल आ गया, लड़ते हुए कहा—'यह वे जानते हैं। कल रात का आशीर्वाद वाला वाक्य स्मरण करो। और मुझसे कह दिया है, भवानन्द के पास रहना। आज वह मरेगा। मौत के समय उससे कहना, मैं आशीर्वाद देता हूँ कि परलोक में उसे वैकुण्ठ प्राप्त हो।'

भवानन्द ने कहा—'भाई, संतानों की जय हो! मेरी मौत के समय एक बार 'वन्दे मातरम्' तो सुना दो।'

तब धीरानन्द की आज्ञा के अनुसार युद्ध से पागल हुए सब सन्तानों ने 'वन्दे मातरम्' गाया। इससे उनकी बाँहों में दूने बल का सञ्चार हो गया। उस भयङ्कर मुहूर्त में बाकी गोरे निहत हुए। रणक्षेत्र फिर निस्तब्ध हो गया।

उस वक्त भवानंद 'वन्दे मातरम्' गाते हुए, मन से विष्णुपद का ध्यान करते हुए परलोक सिधार गये।

हाय! स्त्री-रूप लावण्य! इस दुनिया में तुम्हें ही धिक्कार है।

बारहवाँ परिच्छेद

लड़ाई जीत जाने के बाद, अजय के किनारे सत्यानंद को घेरकर विजयी वीर अनेक तरह के उत्सव करने लगे। केवल सत्यानंद उदास हैं भवानंद के लिए।

अभी तक वैष्णवों की लड़ाई के बाजे अधिक नहीं थे, लेकिन उस समय न जाने कहाँ से हजारों नगाड़े, जङ्गी ढोल, तुरहियाँ, शहनाइयाँ, दमामे, रामसिङ्गा, काँसी वगैरह आ गये। जयसूचक बाजे से जङ्गल, मैदान, नदियाँ, शब्द और प्रतिध्वनित से भर गई। इस प्रकार संतानों ने बहुत देर तक बहुत तरह के उत्सव मनाये, बाद को सत्यानंद ने कहा—'भगवान् ने आज कृपा की है, संतानों की जीत हुई है, लेकिन एक काम बाकी है। जो लोग हमारे साथ उत्सव नहीं मना सके, जिन लोगों ने हमारे उत्सव के लिए जान दी है, उन्हें भूलने से काम नहीं चलेगा। जो लोग रणक्षेत्र में हत होकर पड़े हैं, चलो, हम लोग चलकर उनकी सत्क्रिया करें। तब संतानों का दल 'वन्दे मातरम्' कहता हुआ निहतों की क्रिया के लिए चला। बहुत-से आदमियों ने इकट्ठे होकर 'हरि बोल' कहते हुए, चन्दन की लकड़ी के भार ढो लाकर, भवानंद की चिता बनाई और उस पर भवानंद को लेटाकर के, अग्नि लगाकर, चिता की परिक्रमा लगाते हुए 'हरे मुरारे' गाने लगे। ये विष्णुभक्त हैं, वैष्णव-सम्प्रदाय-मुक्त नहीं; इसलिए दाह करते हैं।

इसके बाद, केवल सत्यानंद, जीवानन्द, महेंद्र, नवीनानन्द और धीरानन्द जङ्गल में आकर बैठ गये हैं। एकान्त में पाँच आदमी सलाह कर रहे हैं। सत्यानन्द ने कहा—'इतने दिनों तक हम लोगों ने जिसके लिए सब कर्म, सब धर्म, सब सुख त्यागा था, वह व्रत सफल हुआ है। इस प्रदेश में मुसलमान-सेना अब नहीं। जो बची-खुची है, वह एक क्षण भी हमारे सामने नहीं ठहरेगी। तुम लोग इस वक्त क्या राय देते हो!'

जीवानन्द ने कहा—'चलो, इसी समय चलकर राजधानी पर

कब्जा करें।'

सत्यानन्द—मेरी भी यही राय है।

धीरानन्द—सेना कहाँ है?'

जीवानन्द—क्यों वही सेना।

धीरानन्द—वह सेना कहाँ? किसी को देख भी रहे हो?

जीवानन्द—इधर-उधर सब आराम कर रहे हैं, डङ्का बजाने पर आ जायेंगे।'

धीरानन्द—एक आदमी भी नहीं पा सकते।

सत्यानन्द—क्यों?

धीरानन्द—सब लूट मार करने के लिए निकल गये हैं। गाँव इस समय रक्षित नहीं है। मुसलमानों के गाँव और रेशम की कोठियाँ लूटकर सब अपने-अपने मकान जायँगे। इस वक्त किसी को भी नहीं पा सकते, मैं खोज कर आया हूँ।

सत्यानन्द का मुँह उतर गया, बोले—जो भी कुछ हो, यह सारा देश हमारे अधिकार में आया। यहाँ और कोई नहीं जो हमसे छेड़-छाड़ करे। वीरेन्द्र भूमि में तुम लोग संतानों का राज्य फैलाओ। प्रजा से कर लो और नगर पर अधिकार करने के लिए सेना एकत्र करो। हिन्दुओं का राज्य हुआ है, यह सुनकर बहुत-से लोग संतानों का झण्डा फहरायेंगे।

तब जीवानन्द वगैरह ने सत्यानन्द को प्रणाम कर कहा—हम लोग प्रणाम कर रहे हैं, महाराजाधिराज, आज्ञा हो तो इसी जङ्गल में हम आपका सिंहासन स्थापित कर दें।

सत्यानन्द ने अपने जीवन में यह पहले-पहल कोप किया। कहा—छिः! मुझे क्या तुम लोगों ने खाली घड़ा समझ रक्खा है? हम कोई राजा नहीं—हम संन्यासी हैं। इस समय देश के राजा स्वयं वैकुण्ठनाथ हैं। नगर पर कब्जा हो जाने पर जिसके सिर पर तुम्हारी इच्छा हो, राजमुकुट पहनाना, लेकिन यह निश्चित रूप से समझना कि इस ब्रह्मचर्य को और कोई भी आश्रम स्वीकृत नहीं करूँगा। इस वक्त तुम लोग अपने अपने काम पर चले जाओ।

तब चार आदमियों ने उठकर ब्रह्मचारी को प्रणाम किया। दूसरों को नहीं मालूम हुआ, सत्यानन्द ने सङ्केत से महेंद्र को रोक रक्खा। बाकी तीन आदमी चले गये। तब सत्यानन्द ने महेंद्र से कहा—तुम

सब लोगों ने विष्णुमण्डप में शपथ लेकर संतान-धर्म ग्रहण किया था। भवानन्द और जीवानन्द दोनों आदमियों ने प्रतिज्ञा तोड़ी है। भवानन्द ने आप अपना स्वीकृत प्रायश्चित्त कर डाला है। मुझे सदा डर है, किसी दिन जीवानंद भी प्रायश्चित्त करके शरीर का विसर्जन न कर दे। लेकिन मुझे एक विश्वास है, किसी गूढ़ कारण से वह अभी मर नहीं सकेगा। अकेले तुमने प्रतिज्ञा रक्खी है। इस समय संतानों का कार्योद्धार हुआ, प्रतिज्ञा थी; जब तक संतानों का कार्योद्धार न हो, तुम स्त्री कन्या का मुख नहीं देखोगे। अब काम पूरा हो गया है, अब तुम फिर से गृहस्थ हो सकते हो।

महेंद्र के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। महेंद्र ने कहा—महाराज किसे लेकर गृहस्थ होऊँ? स्त्री ने तो आत्महत्या कर ली है, और कन्या कहाँ है, यह मैं जानता नहीं, खोज भी कहाँ करूँ? आपने कहा है, जिन्दा है; इतना ही जानता हूँ, और कुछ मुझे नहीं मालूम।'

तब सत्यानन्द ने नवीनानन्द को बुलाकर महेंद्र से कहा—ये नवीनानन्द गोस्वामी हैं—बड़े ही पवित्रचेता मेरे प्रिय शिष्य। ये तुम्हारी लड़की का पता बता देंगे। इतना कहकर सत्यानन्द ने शांति को कुछ इशारा किया। शांति समझकर, प्रणाम कर, बिदा होने को हुई तो महेंद्र ने पूछा—तुमसे मुलाकात कहाँ होगी?

शांति ने कहा—मेरे आश्रम में। इतना कहकर शांति आगे आगे चल दी।

फिर महेंद्र ब्रह्मचारी के चरण छूकर बिदा हुए और शांति के साथ साथ उसके आश्रम में पहुँचे। उस समय रात बहुत हो चुकी थी तो भी शांति आराम न कर शहर की तरफ चल दी।

सब के बिदा हो जाने पर, ब्रह्मचारी अकेले पृथ्वी पर प्रणत होकर, धरती पर मस्तक रखकर मन ही मन भगवान् का ध्यान करने लगे। रात्रि व्यतीत हुई। ऐसे समय किसी ने आकर माथे को छूकर कहा—'मैं हाजिर हुआ हूँ।'

ब्रह्मचारी चौंककर उठ बैठे और बड़े व्यग्रभाव से बोले—'आप क्यों आये हैं?'

जो आये थे, उन्होंने कहा—'दिन पूरे हो गये हैं।'

ब्रह्मचारी ने कहा—'हे प्रभो, आज क्षमा कीजिए, आगामी माघ पूर्णमासी में मैं आपकी आज्ञा पूरी कर दूँगा।'

चौथा खण्ड

पहला परिच्छेद

उस रात्रि को हरि-ध्वनि से वह प्रदेश पूर्ण हो गया। संतानों के दल के दल, इधर-उधर ऊँचे स्वर से, कोई 'वन्दे मातरम्' कोई 'जय जगदीश हरे' गाते हुए, घूमने लगे। शत्रु की सेना के कोई हथियार हरण करने लगा, कोई वस्त्र, कोई मुर्दे के मुँह पर लात मारने लगा, कोई दूसरे प्रकार का उपद्रव करने लगा। कोई गाँव की ओर, कोई शहर की ओर दौड़कर राहगीर या गृहस्थ को पकड़कर कहने लगा—बोल 'वन्दे मातरम्' नहीं तो प्राण ले लूँगा। कोई हलवाई को दूकान लूटकर खाने लगा। कोई अहीर के घर में घुसकर दही की हाँड़ी उतार कर हाथ साफ करने लगा। कोई कहने लगा—'हम लोग व्रज के ग्वाल-बाल आये हैं, ग्वालिन कहाँ है?' उसी रात में गाँव-गाँव, शहर-शहर महा कोलाहल मच गया। सब ने कहा—'मुसलमानों की हार हुई है, देश फिर हिन्दुओं का हुआ है। सब लोग एक बार फिर हरि हरि कहो।' गाँव के लोग मुसलमान देखने पर मारने के लिए पीछे पड़ने लगे। कोई उसी रात को दल बाँधकर मुसलमानों के मुहल्ले में जाकर उनके मकान में आग लगाकर उनका सर्वस्व लूट लेने लगे। बहुत-से मुसलमान काम आये। बहुत-से मुसलमान दाढ़ी मुड़वाकर शरीर में मृत्तिका चढ़ाकर हरिनाम करने लगे। पूछने पर कहने लगे—'हम हिन्दू हैं।'

भयभीत हुए मुसलमानों के दल के दल नगर की तरफ दौड़ पड़े। चारों तरफ राज-कर्मचारी दौड़-धूप करने लगे। बाकी सिपाही वर्दी पहनकर

नगर को बचाने के लिए कतार बाँध कर खड़े हुए। नगर के गढ़ के घाट-घाट पर, कमरे-कमरे पर, हथियारबन्द रक्षक बड़ी सावधानी से द्वार रक्षा करने लगे। सारे आदमी सारी रात जागकर 'क्या होता है, क्या होता है' सोचने लगे। हिन्दू कहने लगे—'आयें, संन्यासी लोग आयें, माता दुर्गा करें हिन्दू के भाग्य में वह दिन हो।' मुसलमान कहने लगे—'या अल्लाह, अकबर, इतने दिनों बाद कुरानशरीफ क्या बिल्कुल झूठ साबित हुई? हम लोग तो पाँचों वक्त नमाज पढ़ते हैं, लेकिन इन तिलकधारी हिन्दुओं की जमात पर फतह नहीं पा सके, दुनिया में सब धोखा है।' इस तरह कोई रोकर, कोई हँसकर, रात काटने लगे।

ये बातें कल्याणी ने सुनीं, बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ सबको मालूम हो चुकी थीं। कल्याणी ने मन ही मन कहा—'हे भगवान्, तुम्हारी जय हो! आज तुम्हारा कार्य पूर्ण हुआ। आज मैं पति को देखने के लिए जाऊँगी। हे मधुसूदन! आज मेरी मदद करो।'

रात को बिस्तर त्याग कर उठकर, अकेली खिड़की खोलकर, इधर-उधर देखती हुई, किसी को न देखकर, धीरे-धीरे चुपचाप कल्याणी गौरीदेवी की पुरी से राजपथ पर निकली। मन ही मन इष्टदेवता का स्मरण कर कहा—'देखो महाराज, आज जैसे पदचिह्न में उनसे भेंट हो।'

कल्याणी नगर की चट्टी में पहुँची। पहरेवाले ने पूछा—'कौन हो तुम?'

कल्याणी ने भयभीत स्वर में कहा—'मैं औरत हूँ।'

पहरेवाले ने कहा—'जाने की आज्ञा नहीं है।'

यह बात दफादार के कानों में गई। उसने कहा—'बाहर निकलना मना नहीं, भीतर आना मना है।'

यह सुनकर पहरे वाले ने कहा—'जाओ भाई, जाने की मनाही नहीं, लेकिन आज की रात बड़ी आफत है, क्या जाने भाई, तुम्हें क्या हो, डाकुओं के हाथ पड़ो या गढ़े में गिरकर प्राण दो। आज रात तुम्हें बाहर नहीं जाना चाहिए।'

कल्याणी ने कहा—'बाबा, मैं भिखारिन हूँ, मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं, डाकू मुझसे क्या लेंगे।'

पहरेवाले ने कहा—'उम्र तो है, भाई उम्र तो है; दुनिया में वही तो जेवर है। हम ही डाकू बन सकते हैं।'

कल्याणी ने देखा—'बड़ी मुसीबत है। बिना कुछ कहे वह चट्टी से बचकर चली गई। पहरेवाले ने देखा, माई रसिकता नहीं समझी, तब दुखी मन से गाँजे की दम लगाकर झिंझोटी-खम्माच में टप्पा अलापने लगा।

कल्याणी चल दी।

उस रात राहगीरों के दलों में कोई मार-मार कह रहा है, कोई भगो भगो कह रहा है, कोई रो रहा है, कोई हँस रहा है; जो जिसे देख रहा है, वह उसे पकड़ रहा है। कल्याणी बड़ी मुसीबत में पड़ी। रास्ता याद नहीं, किसी से पूछने का साहस नहीं, सब लड़ाई पर तुले हैं। केवल छिप-छिपकर अँधेरे में रास्ता चलना पड़ रहा है। छिपकर जाती हुई भी वे बड़े उद्धत विद्रोहियों के एक दल के हाथ पड़ गईं। वे लोग बड़े जोर से चिल्लाकर उन्हें पकड़ने के लिए दौड़े। तब ऊँची साँस लेकर भागती हुई कल्याणी जङ्गल के भीतर घुस गई। वहाँ भी दो-एक डाकू साथ-साथ, उनके पीछे-पीछे दौड़े। एक ने उनका आँचल पकड़ा, कहा—तो फिर 'चाँद।' एकाएक उसी समय एक आदमी और आया और उत्पीड़नकारी के एक लाठी जमाई। चोट खाकर वह पीछे हट गया। इस बचानेवाले व्यक्ति का संन्यासी-वेश है—कृष्णासार-मृग-चर्म से वक्ष ढका हुआ है, अवस्था बहुत थोड़ी है। उसने कल्याणी से कहा—'तुम डरो मत, मेरे साथ चलो—जाओगी कहाँ?'

कल्याणी—'पदचिह्न।'

आगन्तुक चौंक पड़ा, उसे आश्चर्य हुआ, पूछा—'किस तरह! पदचिह्न?' यह कहकर आगन्तुक कल्याणी के दोनों कन्धों पर हाथ रख कर मुँह की तरफ अँधेरे में बड़े गौर से देखने लगा।

पुरुष के छू जाने से कल्याणी अकस्मात् रोमाञ्चित, भीत, क्षुब्ध, विस्मित, अश्रुविप्लुत हुई—ऐसी शक्ति नहीं कि भगें, भय से विह्वल हो गई थीं। आगन्तुक ने निरीक्षण करने के बाद उससे कहा—'हरे मुरारे! पहचान लिया, तुम मुँहजली कल्याणी हो न?'

कल्याणी ने डरकर पूछा—'आप कौन हैं?'

आगन्तुक ने कहा—'मैं तुम्हारा दासानुदास हूँ, हे सुन्दरी, मुझ पर प्रसन्न होओ।'

कल्याणी तेज चाल से वहाँ से हटकर गरजती हुई बोली—'यह अप-

मान करने के लिए ही क्या आपने मेरी रक्षा की थी ? देख रही हूँ, आपका ब्रह्मचारी का वेश है, ब्रह्मचारी का यही धर्म है ? मैं आज असहाय हूँ, वर्ना तुम्हारे मुँह पर मैं लात लगाती।'

ब्रह्मचारी ने कहा—ऐ सुन्दरी ! मैं बहुत दिनों से तुम्हारे इस सुन्दर शरीर के स्पर्श की कामना कर रहा हूँ।' यह कहकर ब्रह्मचारी ने तेज चाल से दौड़ कर कल्याणी को पकड़कर गहरा आलिङ्गन किया। तब कल्याणी खिलखिलाकर हँस दी—ऐ मेरे भाग ! पहले कह देती कि मेरी भी वही हालत है।'

शान्ति ने पूछा—'महेन्द्र को खोजने चली हो ?'

कल्याणी ने कहा—'तुम कौन हो ? मालूम पड़ता है कि तुम तो सब कुछ जानती हो ?'

शान्ति बोली—मैं ब्रह्मचारी हूँ। सन्तान-सेना का अधिनायक—बहुत बड़ा वीर। मुझे सब कुछ मालूम है। आज रास्ते में सिपाहियों और सन्तानों का जो उपद्रव है उससे आज तुम पदचिह्न नहीं जा पाओगी।'

कल्याणी यह सुनकर रो पड़ी।

शान्ति ने तेवर बदल कर कहा—'भय की क्या बात है ? हम लोग नयनों के तीरों से हजार दुश्मनों का कत्ल करते हैं। चलो, पदचिह्न चलें।'

ऐसी चतुर स्त्री की मदद पाकर कल्याणी ने जैसे हाथ बढ़ा कर स्वर्ग पाया। कहा—'तुम जहाँ भी ले चलोगी, मैं वहीं चलूँगी।'

तब शान्ति उसे जङ्गली रास्ते से अपने साथ लेकर चल पड़ी।

दूसरा परिच्छेद

जिस समय शान्ति ने अपना आश्रम छोड़कर घोर रात्रि में शहर की ओर यात्रा की थी, तब जीवानन्द आश्रम में उपस्थित थे। शांति ने जीवानन्द से कहा—'मैं शहर चली। महेंद्र की स्त्री को ले जाऊँगी। तुम महेंद्र से कह दो कि उसकी स्त्री है।'

जीवानन्द भवानन्द से कल्याणी की जान के बचने का सब वृत्तान्त मालूम कर चुके थे; और उसका वर्तमान वासस्थान भी सब जगह विचरण करने वाली शांति से सुन चुके थे। इस प्रकार महेंद्र को कुल बातें सुनाने

लगे।

पहले तो महेंद्र ने विश्वास नहीं किया। आखिर में मारे खुशी के अभिभूत होकर मुग्धप्राय हो गये।

उस रात के बीत जाने पर शांति की सहायता से महेन्द्र से कल्याणी की मुलाकात हुई। सुनसान जङ्गल में, सटे हुए सालों की अँधेरी छाँह में चिड़ियों की नींद टूटने के पहले, दोनों ने एक दूसरे को देखा। गवाह केवल वे नीले आसमान में विहार करने वाले मलिन पड़ते हुए तारे और वे न काँपती हुई असंख्य साल की कतारें। दूर, पत्थर से रगड़ खाकर आवाज़ करती हुई, मधुर कल्लोल वाली सङ्कीर्ण नदी का तर-तर शब्द, कहीं पूरब में उगी हुई ऊषा के मुकुट की ज्योति देखकर प्रफुल्लित कोयल की कूक।

एक पहर दिन बीता। वहाँ शान्ति और जीवानन्द आकर मिले। कल्याणी ने शान्ति से कहा—हम लोग आपके हाथों बिना मोल बिके हुए हैं, हमारी कन्या का पता बताकर इतना उपकार कीजिए।

शांति ने जीवानन्द के मुख की तरफ देखकर कहा—मैं सोना चाहता हूँ। आठ पहर हो गये, मैं बैठा नहीं, दो रात से नहीं सो पाया।

कल्याणी मुस्करा पड़ी। जीवानन्द ने महेंद्र के मुख की तरफ देखकर कहा—वह भार मुझ पर रहा। आप लोग पदचिह्न जाइए—वहाँ आपकी लड़की आपको मिल जायगी।

जीवानंद भरुईपुर निमाई के यहाँ लड़की लेने गये। काम बड़ा आसान नहीं मालूम पड़ा।

निमाई ने पहले लार घूँटी, एक बार इधर-उधर देखा। इसके बाद एक साथ उनके नाक और ओठ फूलने लगे। इसके बाद वह रो पड़ी। इसके बाद कहा—मैं लड़की नहीं दूँगी।

निमाई ने हथेलियों से नेत्र पोंछे तो जीवानन्द ने कहा—लेकिन मेरी दीदी, रोती क्यों हो? इतनी दूर भी नहीं—उनके घर तो तुम गई हो और बीच-बीच देख भी आई हो।

निमाई ने ओठ फुलाकर कहा—तो अपनी कन्या तुम ले ही क्यों न जाओ! यह कहकर सुकुमारी को लाकर क्रोध से धम्म से जीवानन्द के पास पटक कर पैर फैलाकर रोने लगी। फलतः जीवानन्द उस समय

कुछ न कहकर इधर-उधर की बेकार बातें करने लगे। लेकिन निमाई का क्रोध न ठण्डा पड़ा। निमाई उठकर सुकुमारी के कपड़ों की गठरी, गहनों का बक्स, बाल बाँधने के लच्छे, खिलौने, गुड़िया जीवानन्द के सामने झपाझप फेंकने लगी। सुकुमारी वह सब खुद ही इकट्ठा करने लगी। उसने निमाई से पूछा—क्यों माँ, हम कहाँ चलेंगे माँ?

निमाई से अधिक नहीं सहन हुआ। सुकुमारी को गोद में लेकर रोती हुई चल दी।

तीसरा परिच्छेद

पदचिह्न के नये किले में आज महेंद्र, कल्याणी, जीवानन्द, शांति, निमाई, निमाई के पति और सुकुमारी सुख से बैठे हुए हैं। सब लोग सुखपूर्वक सम्मिलित हैं। शांति नवीनानंद के वेश में आई थी। कल्याणी को जिस रात अपनी कुटी में लाई थी, उस रात को मना किया था कि नवीनानंद स्त्री है, यह बात कल्याणी अपने पति से न कहे। एक दिन कल्याणी ने उसे अपने अन्तःपुर में बुला भेजा। नवीनानन्द अन्तःपुर में गये। नौकरों का निषेध नहीं माना।

कल्याणी के पास जाकर शांति ने पूछा—तुमने क्यों बुलाया है?

कल्याणी—मर्द बनकर कितने दिन रहोगी? भेंट नहीं होती, बातें भी नहीं कर पातीं। मेरे पति के सामने तुम्हें प्रकट होना पड़ेगा।

नवीनानन्द बड़ी चिन्ता में रहे, देर तक कुछ नहीं बोले। अन्त में कहा—उसमें बड़ा झंझट है, कल्याणी।

दोनों के बीच यही बातचीत होने लगी। इधर जिन नौकरों ने नवीनानन्द को अन्तःपुर जाने से रोका था, उन लोगों ने महेंद्र को जाकर खबर दी कि नवीनानन्द जबर्दस्ती अन्तःपुर में घुस गये हैं, निषेध नहीं माना। महेंद्र को कौतूहल हुआ, वे भी अन्तःपुर गये। कल्याणी के शयनगृह में जाकर देखा, नवीनानन्द घर के भीतर खड़े हैं, कल्याणी उनके शरीर में हाथ लगाये उनके बाघाम्बर की गाँठ खोल रही है। महेंद्र को बहुत ही आश्चर्य हुआ, बहुत ही गुस्सा हुए।

नवीनानन्द ने उन्हें देखा तो हँसकर बोले—'क्यों गोसाईं! सन्तान पर अविश्वास!'

महेंद्र ने कहा—भवानन्द महाराज क्या विश्वासी थे ?'

नवीनानन्द ने तेवर बदलकर कहा—'कल्याणी क्या भवानन्द के शरीर में भी हाथ लगाकर बाघाम्बर खोल देती थी ?' कहते हुए शांति ने कल्याणी के हाथ पकड़ लिये, बाघाम्बर नहीं खोलने दिया।

महेंद्र—'इससे क्या ?'

नवीनानन्द—'मुझ पर अविश्वास कर सकते हैं, कल्याणी पर अविश्वास किस कारण करते हैं ?'

इस बार महेंद्र बहुत अप्रतिभ हुए। कहा—'कहाँ, किस तरह अविश्वास किया ?'

नवीनानन्द—'नहीं तो मेरे पीछे-पीछे अन्तःपुर में आकर उपस्थित क्यों हुए ?'

महेंद्र—'कल्याणी से मेरी कुछ बातचीत थी, इसी लिए आया हूँ।'

नवीनानन्द—'तो अभी चले जाइए, कल्याणी से मेरी भी कुछ बातचीत है। आप हट जाइए, पहले मैं बातचीत कर लूँ। आपका घर है, आप हर वक्त आ सकते हैं, मैं कठिनाई से एक बार आया हूँ।'

महेंद्र बेवकूफ बन गये। कुछ भी समझ नहीं सके। ये सब बातें तो अपराधी की बातें जैसी नहीं! कल्याणी का भाव भी अजीब है। वह भी तो अविश्वासिनी की तरह नहीं भगी, डरी नहीं, लजाई नहीं बल्कि मधुर-मधुर हँस रही है। और कल्याणी—जिसने उस दरख्त के नीचे अचानक जहर खा लिया था—वह क्या अपराधिनी हो सकती है! महेंद्र यह सब सोच रहे हैं, ऐसे समय अभागिनी शांति ने महेंद्र की दुरवास्था देखकर तनिक मुस्कराकर कल्याणी की तरफ एक विलोल कटाक्ष किया। तब एकाएक अँधेरा मिट गया, महेंद्र ने देखा, वह नारी का कटाक्ष है, साहस करके नवीनानन्द की दाढ़ी पकड़ कर खींची—बनावटी दाढ़ी-मूछें खुल गईं। उसी समय मौका देखकर कल्याणी ने बाघाम्बर की गाँठें खोल दीं—बाघाम्बर भी खुलकर गिर पड़ा। पकड़ में आकर शांति मुँह झुकाकर बैठ गई।

महेंद्र ने शांति से पूछा—'तुम कौन हो ?'

शांति—'श्रीमान नवीनानन्द गोस्वामी।'

महेंद्र—'यह तो सब फरेब है; तुम औरत हो।'

शांति—बेशक।

महेंद्र—तो एक बात पूछता हूँ—तुम औरत होकर सदा जीवानन्द महाराज से सहवास क्यों करती हो?

शांति—अगर वह बात आपसे न बताऊँ!

महेंद्र—तुम औरत हो, जीवानन्द महाराज को यह मालूम है!

शांति—मालूम है।

यह सुनकर विशुद्धात्मा महेंद्र बहुत विषण्ण हुए।

यह देखकर कल्याणी रह नहीं सकीं, बोलीं—जीवानन्द गोस्वामी की स्त्री शांति देवी है!'

कुछ देर के लिए महेंद्र का चेहरा खिल उठा, फिर उस पर अँधेरा छा गया। कल्याणी समझ गईं। बोलीं—'ये ब्रह्मचारिणी हैं।'

चौथा परिच्छेद

उत्तरी बङ्गाल यवनों के हाथ से निकल गया है। यवन कोई यह बात नहीं मानते, मन को समझाते हैं, कहते हैं, कुछ लुटेरे बड़ा अत्याचार कर रहे हैं, हम अभी दण्ड देते हैं। इस प्रकार कितना समय पार होता नहीं कहा जा सकता; लेकिन इसी समय वारेन हेस्टिंग्स ईश्वर के नियोग से बङ्गाल के गवर्नर-जनरल हैं। वारेन हेस्टिंग्स मन को समझाने वाले आदमी नहीं। उनमें यह भाव रहता तो आज आज भारत में ब्रिटिश साम्राज्य कहाँ प्रतिष्ठित होता। संतानों को दबाने के लिए मेजर एडवर्ड्स नाम के दूसरे सेनापति नई सेना लेकर खुले तौर आ डटे।

एडवर्ड्स ने देखा, यह यूरोपीय युद्ध नहीं। दुश्मनों के सेना नहीं, नगर नहीं, राजधानी नहीं, दुर्ग नहीं, फिर भी सब उनके कब्जे में है। जिस दिन जहाँ ब्रिटिश सेना का पड़ाव है, उस दिन के लिए वह स्थान ब्रिटिश सेना के कब्जे में है; इसके बाद ब्रिटिश सेना के चले जाने पर वैसे ही चारों तरफ 'वन्दे मातरम्' गाया जाने लगा। साहब खोज नहीं पाते, कहाँ से ये चींटी की कतारों की तरह एक रात में निकलकर, जो गाँव अङ्गरेजों के कब्जे में आता है, उसे जला जाते हैं या थोड़ी संख्या में ब्रिटिश सेना पाते हैं, उसका खात्मा कर देते हैं। खोज करते-करते साहब ने मालूम किया कि पदचिह्न में दुर्ग बनाकर वहाँ ये लोग अपना अस्त्रागार और धनागार रक्खे हुए हैं। इसलिए उस दुर्ग पर अधिकार करना उचित है, ऐसा उन्होंने निश्चय किया।

गुप्तचरों से वे संवाद लेने लगे कि पदचिह्न में कितने संतान रहते हैं। जो संवाद उन्हें मिला, उससे किले पर हमला करना उन्होंने मुनासिब नहीं समझा। मन ही मन एक अपूर्व कौशल की उद्भावना की।

सामने माघी पूर्णिमा आई। उनके पड़ाव के पास दरिया के किनारे एक मेला लगेगा। इस बार मेले की बड़ी तैयारियाँ हैं। सहज ही मेले में, एक लाख के लगभग भीड़ होती है। इस वार वैष्णव राजा हुए हैं, मेले में वैष्णव बड़ी तैयारियों से आयेंगे, सङ्कल्प किया है। इसलिए पूर्णमासी के दिन कुल संतानों के मेले में इकट्ठे होने की उम्मीद है। मेजर एडवर्ड्स ने सोचा कि पदचिह्न के सब रक्षकों को भी मेले में आने की उम्मीद है। उसी समय पदचिह्न में जाकर वे किले पर कब्जा करेंगे।

मेजर ने यह खबर फैला दी कि वे मेले पर हमला करेंगे, एक जगह कुल वैष्णवों को पाकर एक दिन में दुश्मनों का खात्मा कर देंगे, वैष्णवों का मेला नहीं जमने देंगे।

गाँव-गाँव यह खबर फैल गई। तब संतान-सम्प्रदाय वाला जो जहाँ था, उसी समय हथियार लेकर मेले की रक्षा के लिए दौड़ पड़ा। सभी संतान नदी के किनारे माघी पूर्णिमा को आकर मिले। मेजर साहब ने जो कुछ सोचा था, वही पूरा उतरा। अङ्गरेजों के सौभाग्य से महेंद्र ने भी फन्दे में पैर डाला। पदचिह्न के किले में थोड़ी सी सेना छोड़कर मेले के लिए अधिकांश लेकर महेंद्र रवाना हो गये।

इन सब बातों के होने से पहले ही जीवानन्द और शांति पदचिह्न से बाहर हो गये थे। तब लड़ाई की बातचीत नहीं हुई, लड़ाई की तरफ उनका झुकाव भी नहीं था। माघी पूर्णिमा के शुभ दिन, शुभ समय, पवित्र जल में प्राणों का विसर्जन कर प्रतिज्ञा भङ्ग रूप महापाप प्रायश्चित करेंगे, यही उनकी अभिसन्धि थी। लेकिन रास्ता चलते-चलते उन्होंने सुना कि मेले में आये हुए संतानों के साथ अङ्गरेजों का महायुद्ध होगा। जीवानन्द ने कहा—'तो युद्ध में ही मरूँगा, शीघ्र चलो।'

वे तेजी से चले। एक जगह एक टीले पर से रास्ता गया है। टीले पर चढ़कर वीर-दम्पति ने देखा, नीचे कुछ दूर पर अङ्गरेजों का शिविर है। शांति ने कहा—'मरने की बात अभी रहे, बोलो—वन्दे मातरम्।'

पाँचवाँ परिच्छेद

फिर दोनों ने आपस में कोई परामर्श किया। परामर्श करके जीवानन्द एक जङ्गल में जा छिपे। शांति एक दूसरे जङ्गल में घुसकर अद्भुत रहस्य में प्रवृत्त हुई।

शान्ति मरने को तैयार थी, मरने के समय स्त्री-वेश धारण करेगी, यह सोच लिया था। महेंद्र ने कहा है, वह पुरुष वेश से दूसरों को धोखा देती है। दूसरों को धोखा देते हुए मरा नहीं जायगा। इसलिए टेपरिया वह साथ ले आई है; उसमें उसकी पहनने-ओढ़ने की चीजें हैं। अब नवीनानन्द टेपरिया खोलकर वेश बलदने लगे।

तिलक पर कत्थे की बिन्दी लगाकर उस समय के प्रचलित घुँघराले, झपटे से चाँद मुख ढककर, एक सरङ्गी हाथ में लेकर वैष्णवी के वेश से शान्ति अङ्गरेज शिविर में गई। उसे देखकर भौंरे-सी काली दाढ़ी मूछोंवाले सिपाही पागल हो गये। किसी ने टप्पा, किसी ने गजल, किसी ने श्यामा-विषय, किसी ने कृष्ण-विषय की फरमाइश की और गाना सुना। किसी ने चावल दिया, किसी ने दाल दी, किसी ने मिठाई दी, किसी ने पैसा दिया, किसी ने चवन्नी दी। वैष्णवी जब शिविर की अवस्था अपनी आँखों विशेष रूप से देखकर चली जा रही थी, सिपाहियों ने पूछा—'फिर कब आओगी?'

वैष्णवी ने कहा—'यह नहीं कह सकती, मेरा घर बहुत दूर है।'

सिपाहियों ने पूछा—'कितनी दूर?'

वैष्णवी ने कहा—'मेरा घर पदचिह्न में है।'

इस समय वही मेजर साहब पदचिह्न की कुछ खबरें ले रहे हैं, एक सिपाही यह जानता था। वैष्णवी को बुलाकर वह कप्तान साहब के पास ले गया। साहब उसे मेजर के पास ले गये। मेजर साहब के पास जाकर वैष्णवी मधुर हँसकर, मर्मभेदी कटाक्ष करके साहब का दिमाग चकरा कर खँजड़ी बजा-बजाकर गाने लगी—

'म्लेच्छनिवह-निधने कलयसि करवालम्।'

साहब ने पूछा—'टुमारा घर कहाँ है बीबी?'

वैष्णवी ने कहा—'मैं बीवी नहीं, वैष्णवी हूँ, मेरा घर पदचिह्न में है।'

साहब—where is that adsin padsin? वहाँ एक गर है?'

वैष्णवी ने कहा—'घर?—बहुत से घर हैं।'

साहब—'गर नईं—गर नईं—गर—गर।'

शान्ति—'साहब, तुम्हारे मन की बात समझ गई। गढ़

साहब—'इयस, इयस, गर। गर है?'

शान्ति—'गढ़ है। बड़ा भारी किला है।'

साहब—'केट्टे आदमी?'

शान्ति—'गढ़ में कितने आदमी रहते हैं? बीस पचीस हजार।'

साहब—'नान्सेन्स। एक किला में डो-चार रह सकटा। वहीं अभी है या चला गया?'

शान्ति—'जायँगे कहाँ?'

साहब—'मेला में टुम वहाँ से कब आया?'

शान्ति—'कल आई हूँ, साहब।'

साहब—'वह लोग आज चला गया होगा?'

शान्ति मन ही मन सोच रही थी—'तुम्हारे बाप की श्राद्ध के चावल अगर मैंने नहीं चढ़ाये, तो मेरा तिलक लगाना ही बेकार है। कब स्यार तुम्हारा सर खायँगे, मैं देखूँगी। खुलकर कहा—'साहब हाँ, साहब, हो सकता है, आज चले गये हों तो चले जा सकते हैं। इतनी खबर मैं नहीं रखती, वैष्णवी हूँ, गाने गाकर, भीख माँगकर खाती हूँ; इतनी खबर नहीं रखती। बकते हुए गला सूख गया, पैसा दो; जाऊँ। और बढ़िया इनाम दो तो न हो परसों आकर बता जाऊँगी।'

ठन्न से एक चाँदी का रुपया फेंककर साहब ने कहा—'परसों नहीं बीबी।'

शान्ति ने कहा—'धत् तेरे की, वैष्णवी कह, बीबी क्या कहता है?'

एडवर्ड्स—'परसों नईं, आज राट को हमको खबर मिलना चाहिए।'

शान्ति—'सिरहाने बन्दूक रखकर, शराब पीकर, नाक में सरसों का तेल डालकर सो जाओ। आज मैं दस कोस रास्ता चलूँगी और लौटूँगी—आपको खबर ला दूँगी। कुतिबे कहीं के।'

एडवर्ड्स—'छुतिहे कहाँ के किसको कहटा है?'

शान्ति—'जो वीर—बड़ा जण्डैल है।'

एडवर्ड्स—Great general (बड़ा जनरल) हम हो सकटा है—क्लाइव का माफक। लेकिन आज हमको खबर मिलना चाहिए। सौ रुपिया इनाम देगा।'

शान्ति—'सौ दो चाहे हजार दो, बीस कोस इन दो पैरों से नहीं हो सकता।'

एडवर्ड्स—'घोड़े पर?'

शान्ति—'घोड़े पर चढ़ना जानती होती तो तुम्हारे डेरे में आकर खञ्जरी बजाकर भीख माँगने आती?'

एडवर्ड्स—'गोद पर ले जायगा।'

शान्ति—'गोद पर बैठाकर ले जायगा, मेरे लज्जा नहीं?'

एडवर्ड्स—'क्या मुश्किल, पाँच सौ रुपया देगा।'

शान्ति—'कौन जायगा? तुम खुद जाओगे?'

तब साहब ने अँगुली के इशारे से सामने खड़े हुए लिण्डले नाम के एक नौजवान एनसाइन को दिखाकर उससे पूछा—'लिण्डले, तुम जा सकते हो?'

शान्ति का रूप-लावण्य देखकर लिण्डले ने कहा—'खुशी से।'

तभी एक बड़ा अरबी घोड़ा कसकर लाया गया, लिण्डले भी तैयार हुआ। शान्ति को उठाकर घोड़े पर चढ़ाने लगा। शान्ति ने कहा—'छिः! इतने आदमियों के बीच? मुझे क्या किसी बात की लज्जा नहीं? पहले चलो, छावनी तो पार करें।'

लिण्डले घोड़े पर चढ़ा। घोड़ा धीरे-धीरे ले चला। शान्ति पीछे-पीछे पैदल चली। इस तरह वे शिविर के बाहर निकल गये।

शिविर के बाहर आने पर एकान्त स्थान देख कर शान्ति लिण्डले के पैर पर पैर रखकर एक उड़ान से घोड़े पर पहुँची। लिण्डले ने हँसकर कहा—'तुम तो पूरी सवार हो।'

शान्ति ने कहा—'हम ऐसी पक्की सवार हैं कि तुम्हारे साथ चढ़कर चलने में शर्म लगती है। छिः! रकाब में पैर रखकर सवारी करते हो!'

एक बार शेखी बघारने के लिए लिण्डले ने रकाब से पैर निकाला।

शान्ति ने उसी समय मूर्ख अङ्गरेज की गर्दन में हाथ लगा कर उसे घोड़े से गिरा दिया। घोड़े की पीठ पर तब शांति ठीक से जम कर बैठ गई, अब पेट में कड़ों की एड़ लगाकर अरबी को हवा के साथ ले दौड़ी। चार साल सन्तानों की सेना में रह कर शान्ति ने घोड़े की सवारी भी सीख ली थी। बगैर सीखे वह जीवानन्द के साथ थोड़े ही रह सकती थी। लिण्डले का एक पैर टूट गया, वे वहीं पड़े रह गये। शान्ति वायुवेग से घोड़े पर चलती चली गई।

जिस जङ्गल में जीवानन्द छिपे थे, शान्ति ने वहाँ जाकर कुल खबर जीवानन्द को दी। जीवानन्द ने कहा—'तो मैं फौरन् जाकर महेंद्र को होशियार करता हूँ। तुम मेले में जाकर सत्यानन्द को खबर दो। तुम घोड़े पर जाओ, जिससे प्रभु शीघ्र खबर पायें।' तब दोनों आदमी दो तरफ दौड़े। कहना बेकार है, शांति फिर नवीनानन्द बन गई।

छठा परिच्छेद

एडवर्ड्स पक्के अङ्गरेज थे। चट्ठी-चट्टी में उनके आदमी थे। फौरन् उनके पास खबर पहुँची कि वह वैष्णवी लिण्डले साहब को गिराकर खुद घोड़े पर सवार होकर कहीं निकल गई है। सुनते ही एडवर्ड्स ने कहा—"an aunt of Satan ! Strike the tents' (शैतान की बच्ची है ! तम्बू उठाओ।)

तब खटाखट तम्बू के खूँटों पर हथौड़ों की चोटें पड़ने लगीं। मेघरचित अमरावती की तरह वस्त्रनगरी अन्तर्हित हुई। सामान गाड़ियों पर लदा। आदमी घोड़ों पर या अपने पैरों पर चले। हिन्दू, मुसलमान, मद्रासी, गोरे कन्धे पर बन्दूक रक्खे चर्र-मर्र करते हुए चले। तोपें चरखियों पर घरघराती हुई चलीं।

इधर महेंद्र सन्तानों की सेना लेकर मेले के रास्ते बढ़ रहे थे। उसी दिन तीसरे पहर महेंद्र ने सोचा, दिन ढल चुका, कहीं तम्बू गाड़ने चाहिए।

शिविर का संस्थापन उन्होंने उचित समझा। वैष्णवों के तम्बू नहीं; पेड़ के नीचे बोरिया कथरी बिछाकर लेटते हैं। थोड़ा-सा हरिचरणामृत पान कर रात पार करते हैं। भूख जो बाकी रहती है, स्वप्न में वैष्णव

देवी का अधरामृत पान कर मिटाते हैं। शिविर के योग्य पास में एक स्थान था; एक बड़ा बगीचा, जिसमें आम, कटहल, बबूल और इमली के वृक्ष थे। महेंद्र ने आज्ञा दी—'यहीं शिविर स्थापित करो।' उसी की बगल में एक टीला था, चढ़ने में बड़ा ऊबड़-खाबड़। महेंद्र ने एक बार सोचा, इस पहाड़ी पर शिविर बनाना अच्छा होगा, स्थान देख आयँगे।

यह विचार कर महेंद्र घोड़े पर सवार होकर धीरे-धीरे टीले पर चढ़ने लगे। वे कुछ दूर बढ़े तो एक युवा वैष्णव ने सेना के भीतर आकर कहा—'चलो, टीले पर चढ़ो।' पास में जो लोग थे, उन्होंने आश्चर्य में होकर पूछा—'क्यों?'

योद्धा ने मिट्टी के एक टीले पर खड़े होकर कहा—चलो, इस चाँदनी रात में उस पहाड़ी की चोटी पर नये वसन्त के फूलों की सुगन्ध लेते-लेते आज हमें शत्रु से लड़ाई करनी होगी।' सन्तानों ने देखा, सेनापति जीवानन्द हैं। तब 'हरे मुरारे' की ऊँची आवाज करती हुई सन्तानों की कुल सेना बल्लम के सहारे उठकर खड़ी हुई और जीवानन्द का अनुकरण करती तेजी से टीले पर चढ़ने लगी, एक ने कसा घोड़ा जीवानन्द को लाकर दिया। दूर से महेंद्र देख कर विस्मित हुए। सोचा, यह क्या, न कहते ही ये क्यों आ रहे हैं। अब महेंद्र घोड़े का मुँह फेर कर चाबुक लगाते गर्द उड़ाते पहाड़ी से उतरने लगे। सन्तानवाहिनी के सामने चलने वाले जीवानन्द को देखकर पूछा—'यह क्या है, आनन्द?'

जीवानन्द हँसकर बोला—'आज बड़ा आनन्द है। टीले के उस तरफ एडवर्ड्स साहब हैं। जो पहले टीले पर जायगा, उसी की जीत है।'

फिर जीवानन्द ने संतान-सेना को पुकार कर कहा—'तुम लोग पहचानते हो? मैं जीवानन्द गोस्वामी हूँ। मैंने हजार शत्रुओं को मारा है।'

तुमुल निनाद ने जङ्गल और मैदान को ध्वनित किया—'हम पहचानते हैं, तुम जीवानन्द गोस्वामी हो?'

जीवानन्द—'कहो, हरे मुरारे।'

कानन और प्रान्तर हजारों कण्ठों से ध्वनित हुआ—'हरे मुरारे!'

जीवानन्द—टीले के उस तरफ शत्रु हैं। आज ही इस टीले की चोटी पर इस नीलाम्बरी यामिनी के सामने सन्तान लड़ेंगे। जल्दी जाओ, जो पहले शिखर पर चढ़ेगा, उसकी जीत होगी। कहो 'वन्दे मातरम्!'

जङ्गल और मैदान को ध्वनित करके 'वन्दे मातरम्' गाना होने लगा। धीरे-धीरे सन्तानों की सेना पहाड़ी की चोटी पर चढ़ने लगी। लेकिन उन लोगों ने भयभीत होकर देखा, महेंद्रसिंह बड़ी तेजी से टीले से उतरते हुए तूर्यध्वनि कर रहे हैं। देखते-देखते शिखर पर नीलाकाश-पट में तोपों की कतार के साथ अङ्गरेजों की गोलन्दाज-सेना शोभा देने लगी। ऊँचे कण्ठ से वैष्णवी सेना ने गाया—

'तुमि विद्या तुमि भक्ति
बहुते तुमि मा शक्ति
त्वं हि प्राणाः शरीरे।'

लेकिन अङ्गरेजों की तोपों के अररर अररर बम्' शब्द में वह महागीत बह गया। सैकड़ों सन्तान हताहत होकर अस्त्र-शस्त्रों के साथ उस टीले पर सोये। फिर 'अररर बम्' दधीचि की अस्थि को व्यक्त करके, समुद्र के तरङ्ग-भङ्ग को कुछ न समझ कर अङ्गरेजों का वज्र चलने लगा। किसान के हँसिये के समान पके धान की तरह सन्तान-सेना टुकड़े टुकड़े होकर धराशायी होने लगी। व्यर्थ जीवानन्द, और महेंद्र प्रयत्न करते रहे। गिरती हुई शिलाराशि की तरह संतान-सेना टीले से फिरने लगी। कौन कहाँ भागे, पता नहीं। तब एक साथ सबके विनाश के लिए गोरों की पलटन 'हुरें हुरें' कहती हुई टीले से उतरी। सङ्गीन उठाये हुए बहुत ही द्रुत वेग से पर्वत से गिरती हुई विशाल नदी के प्रपात की तरह, दुर्दम असंख्य, अजेय ब्रिटिश सेना भागती हुई सन्तान सेना के पीछे लगी। एक बार महेंद्र से मुलाकात होने पर जीवानंद ने कहा—'आज आखीर है। आओ, यहीं प्राण दे दें।'

महेंद्र ने कहा—'अगर मरने पर लड़ाई जीती जाती तो मरा जाता, बेकार मौत वीर का धर्म नहीं।'

जीवानन्द—मैं बेकार ही मरूँगा। फिर भी लड़ाई में मरूँगा।

फिर पीछे फिर कर ऊँचे स्वर से जीवानंद ने पुकारा—कौन हरिनाम करते हुए मरना चाहते हो, मेरे साथ चलो।

बहुतेरे बढ़े। जीवानंद ने कहा—इस तरह नहीं। ईश्वर के सामने शपथ लो, जिन्दा नहीं लौटेंगे।

जो बढ़े थे, खिंचे। जीवानंद ने कहा—कोई नहीं चलता तो मैं अकेला चला।

जीवानंद ने घोड़े की पीठ पर सीधे होकर बहुत दूर पीछे छूटे हुए महेंद्र को पुकारकर कहा—भाई, नवीनानंद से कहना, मैं चला, परलोक में भेंट होगी।

इतना कहकर उस वीर ने लोहे की वर्षा के भीतर वेग से घोड़े को घुसा दिया। बायें हाथ में बल्लम, दायें में बन्दूक, मुख में हरे मुरारे, हरे मुरारे, हरे मुरारे! लड़ाई की सम्भावना नहीं; इस साहस का कोई फल नहीं। फिर भी, हरे मुरारे! हरे मुरारे! गाते-गाते जीवानन्द शत्रु के व्यूह में दाखिल हो गये।

भागते हुए संतानों को पुकारकर महेंद्र ने कहा—देखो, एक बार तुम लोग घूमकर जीवानंद गोसाईं को देखो; देखने पर मरोगे नहीं!

लौटकर कुछ संतानों ने जीवानंद की अमानुषी कृति देखी; पहले विस्मित हुए, इसके बाद कहा—जीवानंद मरना जानते हैं, हम लोग नहीं जानते! चलो, जीवानंद के साथ बैकुण्ठ चलें।

यह बात सुनकर थोड़े संतान लौटे। उनकी देखादेखी कुछ और भी लौटे, उनकी देखादेखी कुछ और। एक शोरगुल उठा। जीवानन्द शत्रु के व्यूह में घुस गये थे। संतानों में से किसी ने उन्हें नहीं देखा।

इधर सम्पूर्ण रणक्षेत्र से सन्तानों ने देखा, कुछ संतान फिर लौट रहे हैं। सबने सोचा, सन्तानों की जीत हुई है, सन्तान शत्रु को खदेड़े जा रहे हैं। तब कुल सन्तान-सेना मार-मार कहती हुई अङ्गरेज-सेना पर टूट पड़ी।

इधर अङ्गरेज-सेना में एक भारी भगदड़ मच गई। सिपाही लड़ने

की तरफ ध्यान न देकर दोनों तरफ से भाग रहे हैं। गोरे भी लौटकर सङ्गीन ऊँची कर शिविर की तरफ दौड़ रहे हैं। इधर-उधर निरीक्षण करके महेंद्र ने देखा, टीले की चोटी पर असंख्य सन्तान-सेना देख पड़ रही है। वह वीरदर्प से उतरकर अङ्गरेज-सेना पर हमला कर रही है। तब उन्होंने सन्तानों को पुकार कर कहा—हे सन्तानो, वह देखो, शिखर पर प्रभु सत्यानंद गोस्वामी की ध्वजा दिखाई दे रही है। आज साक्षात् मुरारी मधुकैटभ-निसूदन केशि-कंस-विनाशन युद्ध में अवतीर्ण हैं—एक लाख सन्तान शिखर पर हैं! कहो 'हरे मुरारे! हरे मुरारे।'

तब 'हरे मुरारे' की भीषण ध्वनि से जङ्गल और मैदान मथित होने लगे। समस्त सन्तानों ने 'मा भैः मा भैः' रव से ललित-ताल ध्वनि-संवलित अस्त्रों की झनकार से सब जीवों को विमोहित कर लिया। दर्प से महेंद्र की वाहिनी ऊपर चढ़ने लगी। शिलाओं के प्रतिघात से लौटाई हुई निर्झरिणी की तरह राज-सेना विलोड़ित; स्तम्भित और भीत हुई। उसी समय पचीस हजार सन्तान सेना लेकर ब्रह्मचारी सत्यानंद समुद्र-प्रपात की तरह राज-सेना पर टूट पड़े। घमासान लड़ाई हुई।

जिस प्रकार दो बड़े-बड़े पत्थरों के सङ्घर्ष से, बीच में छोटी मक्खी पिस जाती है, उसी तरह दो सन्तान-सेनाओं के सङ्घर्ष में वह विशाल राज सेना नष्ट हो गई।

वारेन हेस्टिंग्स के पास खबर पहुँचा दे, ऐसा आदमी नहीं बचा।

सातवाँ परिच्छेद

पूर्णमासी की रात है। वह भीषण रणक्षेत्र इस समय स्थिर है। वह घोड़ों की खटापट, वह बन्दूकों की कड़ाकड़, तोपों की घड़ाम-घम्म और सर्वव्यापी धुआँ अब कुछ भी नहीं। कोई हुर्रे नहीं कह रहा, कोई हरिध्वनि नहीं कर रहा। बोल रहे हैं सिर्फ स्यार, कुत्ते, गिद्ध, सबसे ज्यादा है घायल व्यक्तियों का आर्तनाद। किसी का हाथ कट गया है, किसी का सर फूट गया है, किसी का पैर टूट गया है, किसी के पञ्जर में छेद हो गया है, कोई कोई 'बाप' पुकार रहे हैं, कोई जल पीना चाहता है, किसी की कामना है मृत्यु। बङ्गाली, हिन्दुस्तानी, मुसलमान, अङ्गरेज एक जगह लिपटे पड़े हैं! जिन्दों और मुर्दों, आदमियों और घोड़ों की ठसाठ

गबड़सट्ट। माघ की उस पूर्णमासी की रात को कठिन जाड़े में, स्वच्छ चाँदनी में रणभूमि बड़ी भयङ्कर दिखाई पड़ रही थी। वहाँ जाने का साहस नहीं होता।

किसी का साहस नहीं होता, लेकिन आधी रात को एक स्त्री उस अगम्य रणक्षेत्र में घूम रही थी। एक मशाल जलाकर उस शवराशि के बीच वह क्या ढूँढ़ रही थी? हर एक मुर्दे के पास मशाल ले जाकर मुँह देखकर फिर दूसरे मुर्दे के पास मशाल ले जाती थी। कहीं कोई मुर्दा मरे घोड़े के नीचे दबा है, वहाँ युवती मशाल मिट्टी में गाड़कर घोड़े को दोनों हाथों से हटाकर मुर्दा निकालती थी। फिर जब देखती थी, वह जिसे ढूँढ़ रही है, यह वह नहीं, तब मशाल उठाकर चली जाती थी। इस तरह ढूँढ़ती हुई युवती सारे मैदान में फिरी। जिसे ढूँढ़ रही है, उसे कहीं भी नहीं मिला। तब मशाल डालकर शवराशि से पूर्ण उस रक्त-रञ्जित भूमि में लोटकर रोने लगी। वह शान्ति थी, जीवानन्द का शव खोज रही थी।

शांति लोटती हुई रोने लगी। इसी समय बड़ी मधुर करुण ध्वनि उसके कानों में गई। कोई जैसे कह रहा है—उठो माँ, रोओ मत।' शांति ने आँखें उठाकर देखा, सामने ज्योत्स्नालोक में खड़े हुए, एक पहले के न दिखे, भारी शरीर के, जटाजूटधारी महापुरुष हैं।

उठकर शांति खड़ी हो गई। जो आये थे, उन्होंने कहा—'माँ, रोओ मत, जीवानन्द का शव मैं खोज देता हूँ। तुम मेरे साथ आओ।'

तब वे महापुरुष शांति को रणक्षेत्र के बीच भाग में ले गये। वहाँ असंख्य लाशें एक दूसरी पर पड़ी थीं। शांति उन सबको हिला नहीं सकी। उस शवराशि से उस महा बलवान पुरुष ने एक लाश अलग करके बाहर निकाली। शांति ने पहचाना, वह जीवानन्द की देह थी। सारे अङ्गों में घाव लगे हुए, सारी देह खून से तर। शांति साधारण औरत की तरह ऊँचे कण्ठ से विलाप करने लगी।

उन्होंने फिर कहा—'माँ, रोओ मत, जीवानन्द क्या मरा है? स्थिर

होकर इसकी देह की परीक्षा करके देखो। पहले नाड़ी देखो।'

शांति ने शव की नाड़ी देखी, किञ्चिन्मात्र भी गति नहीं। उस पुरुष ने कहा—'हृदय पर हाथ रखकर देखो।'

जहाँ हृत्पिण्ड है, शांति ने हाथ रखकर देखा, तनिक भी गति नहीं, सब ठण्डा पड़ गया है।

उस महापुरुष ने फिर कहा—'नाक के पास हाथ रखकर देखो—कुछ साँस चल रही है?'

शांति ने देखा, साँस कुछ भी नहीं चल रही।

उस महापुरुष ने कहा—'फिर देखो, मुँह के भीतर अँगुली रखकर देखो—कुछ गरमी है या नहीं?'

शांति ने अँगुली रखकर, मालूम करते हुए कहा—'कुछ समझ नहीं पा रही।' शांति आशामुग्ध हो गई।

बायें हाथ से महापुरुष ने जीवानन्द की देह स्पर्श की। कहा—'तुम भय से हताश हो गई हो इसीलिए समझ नहीं पा रही हो। जान पड़ता है, देह में अभी तक कुछ गरमी है। अच्छा, फिर देखो।'

फिर शांति ने नाड़ी देखी, कुछ गति है। विस्मित होकर हृत्पिण्ड पर हाथ रक्खा—कुछ धक-धक कर रहा है। नाक के सामने अँगुली रक्खी, कुछ साँस चल रही है। मुँह के भीतर कुछ गरमी मिली। शांति आश्चर्य में आकर बोली—'प्राण पहले से थे या फिर आये हैं?'

उन्होंने कहा—'यह भी कहीं होता है माँ! तुम इसे लेकर तालाब के किनारे ले जा सकोगी? मैं चिकित्सक हूँ, इसकी चिकित्सा करूँगा।'

शांति अनायास ही जीवानन्द को गोद में लेकर तालाब के किनारे चली। चिकित्सक ने कहा—'तुम इसे तालाब में ले जाकर सारा खून धो दो। मैं औषधि लेकर आता हूँ।'

शांति ने जीवानन्द को तालाब के किनारे ले जाकर सारा खून धो दिया। उसी समय चिकित्सक ने जङ्गली लतापत्रों का प्रलेप ले आकर कुल घावों पर लगाया। इसके बाद जीवानन्द के कुल अंगों पर बार-बार

हाथ फेरा। तब जीवानन्द एक लम्बी साँस छोड़कर उठ बैठे। शांति के मुँह की तरफ देखकर पूछा—'युद्ध में किसकी विजय हुई?'

शांति ने कहा—'तुम्हारी ही विजय हुई। इन महात्मा को प्रणाम करो।'

तब दोनों ने देखा, कहीं, कोई नहीं, किसे प्रणाम करें!

पास विजयी सन्तान-सेना का उठता हुआ ऊँचा कोलाहल सुनाई पड़ रहा था, लेकिन शांति या जीवानन्द कोई उठे नहीं—उस पूर्ण चन्द्र की किरणों से समुज्ज्वल पुष्करिणी के सोपान पर बैठे रहे। जीवानन्द की देह उस दवा के गुण से बहुत थोड़े समय में अच्छी हो आई। उन्होंने कहा—'शांति, चिकित्सक की दवा में आश्चर्यजनक गुण है। मेरी देह में अब किसी प्रकार का दर्द या सुस्ती नहीं—अब कहाँ चलोगी, चलो। वह संतान-सेना का विजय के उत्सव का शोर सुनाई दे रहा है।'

शांति ने कहा—'अब और वहाँ नहीं। माँ का काम पूरा हो चुका है। यह देश सन्तानों का हुआ है। हमें राज्य का हिस्सा नहीं चाहिए। अब फिर क्या करने वहाँ जायँ?'

जीवानन्द—'जो कुछ छीना है, उसे बाहुबल से रखना होगा।'

शांति—'रखने के लिए महेंद्र हैं। सत्यानन्द खुद हैं। प्रायश्चित्त करके संतान धर्मवाला शरीर छोड़ चुके हो। इस पुनः पाये शरीर पर संतानों का अधिकार नहीं है। हम संतानों के लिए मर चुके हैं। अब हमें देखने पर संतान लोग कहेंगे, जीवानन्द लड़ाई के समय प्रायश्चित्त के डर से छिपा था, विजय हुई है देखकर, राज्य का हिस्सा बँटाने आया है।'

जीवानन्द—'सो क्या शांति! लोगों के अपवाद के भय से अपना काम छोड़ दूँगा? मेरा काम मातृ-सेवा है, कोई कुछ भी कहे, मैं मातृ-सेवा ही करूँगा।'

शान्ति—'उसमें अब तुम्हारा हक नहीं, क्योंकि अपनी देह तुम मातृ-सेवा के लिए छोड़ चुके हो। अगर फिर माँ की सेवा तुम्हें करने को मिली, तो तुम्हारा प्रायश्चित्त क्या हुआ? मातृ-सेवा से वञ्चित होना ही इस प्रायश्चित्त का प्रधान अंश है। वर्ना केवल तुच्छ प्राणों का त्याग क्या कोई बड़ा भारी काम है?'

जीवानन्द—'शान्ति, तुम्हीं सब कुछ समझ सकती हो। मैं इस प्रायश्चित्त को अधूरा नहीं रक्खूँगा। मेरा सुख सन्तान-धर्म में है। उस सुख से अपने को मैं वञ्चित करूँगा, लेकिन जाऊँगा कहाँ? मातृ-सेवा छोड़कर घर जाकर सुख-भोग तो नहीं कर सकता।'

शान्ति—'ऐसा तो मैं नहीं कह रही। हम अब गृहस्थ नहीं। इसी प्रकार दोनों संन्यासी रहेंगे, चिर ब्रह्मचर्य पालन करेंगे, चलो, इस समय हम देश-देश तीर्थाटन करें।'

जीवानन्द—'इसके बाद?'

शान्ति—'इसके बाद हिमालय पर कुटी तैयार कर दोनों देवता की आराधना करेंगे; जिससे माता का मङ्गल हो, वैसा वर माँगेंगे।'

इसके पश्चात् दोनों उठकर, हाथ पकड़े हुए, ज्योत्स्नामयी रात्रि में अन्तर्हित हो गये।

हाय! फिर क्या आयँगे, माँ! जीवानन्द जैसा पुत्र, शान्ति जैसी कन्या क्या फिर गर्भ में धारण कर सकोगी?

आठवाँ परिच्छेद

सत्यानन्द महाराज रण-क्षेत्र से, किसी से कुछ कहे बिना, आनन्दमठ चले आये। वहाँ गहरी रात को विष्णुमण्डप में बैठकर ध्यान करने लगे। इसी समय वे चिकित्सक वहाँ पहुँचकर दिखाई दिये। उन्हें देखकर सत्यानन्द ने उठकर प्रणाम किया।

चिकित्सक ने कहा—'सत्यानन्द, आज माघी पूर्णिमा है।'

सत्यानन्द—'चलिए, मैं तैयार हूँ, लेकिन हे महात्मन्, मेरा एक सन्देह दूर कीजिए। जिस मुहूर्त युद्ध में विजय प्राप्तकर मैंने सन्तान-धर्म को निष्कण्टक किया, उसी समय मेरे लिए यह त्याग की आज्ञा क्यों हुई?'

जो आये थे, उन्होंने कहा—'तुम्हारा काम सिद्ध हो चुका है। मुसलमानों का राज्य खत्म हो चुका है। अब तुम्हारा कोई काम नहीं। बेकार की जीवहत्या की जरूरत नहीं।

सत्यानन्द—'मुसलमानों का राज्य खत्म हो चुका है, लेकिन हिन्दू-राज्य स्थापित नहीं हुआ। अभी कलकत्ते में अँगरेज प्रबल हैं।'

जो आये थे, उन्होंने कहा—'हिन्दू राज्य अब भी स्थापित नहीं होगा। तुम रहोगे तो बेकार ही नर-हत्याएँ होंगी, इसलिए चलो।'

यह सुनकर सत्यानन्द तीव्र मर्म-पीड़ा से व्यथित हुए। कहा—हे प्रभो, यदि हिन्दू-राज्य स्थापित नहीं होगा तो कौन राजा होगा! क्या फिर मुसलमान ही राजा होंगे!'

उन्होंने कहा—'नहीं, अब अङ्गरेज राजा होंगे।'

सत्यानन्द के दोनों नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी। वे ऊपर स्थित मातृरूपा जन्मभूमि-प्रतिमा की ओर फिरकर हाथ जोड़कर वाष्परुद्ध स्वर से कहने लगे—'हाय माँ! तुम्हारा उद्धार नहीं कर सका। फिर तुम म्लेच्छों के हाथ पड़ोगी। सन्तान का अपराध न लेना। हाय माँ! क्यों आज रणक्षेत्र में मेरी मौत नहीं हुई?'

चिकित्सक ने कहा—'सत्यानन्द, दुखी न होओ। तुमने बुद्धि के भ्रम से दस्यु-वृत्ति-द्वारा धन-संग्रह करके युद्ध जय किया है। पाप का कभी पवित्र फल नहीं होता। इसलिए तुम लोग कभी देश का उद्धार नहीं कर सकोगे। और जो कुछ होगा, अच्छा ही होगा। अङ्गरेजों के राजा हुए बिना सन्तान-धर्म के पुनरुद्धार की सम्भावना नहीं। महापुरुषों ने जैसा समझा है, यह बात मैं तुम्हें उसी रूप से समझाता हूँ। मन लगाकर सुनो। तैंतीस करोड़ देवताओं की पूजा सन्तान-धर्म नहीं, वह एक लौकिक गिरा हुआ धर्म है; उसके प्रभाव से सच्चा सन्तान-धर्म—म्लेच्छ जिसे हिन्दू-धर्म कहते हैं—वह लुप्त हो गया है। यथार्थ हिन्दू-धर्म ज्ञानात्मक है, कर्मात्मक नहीं। वह ज्ञान दो प्रकार का है—वहिर्विषयक और अन्तर्विषयक। अन्तर्विषयक जो ज्ञान है, वही संतान-धर्म का प्रधान भाग है। लेकिन वहिर्विषयक ज्ञान के हुए बिना अन्तर्विषयक ज्ञान के होने की सम्भावना नहीं। स्थूल क्या है, इसे जाने बिना सूक्ष्म क्या है, यह नहीं जाना जा सकता। इस समय इस देश में बहुत दिनों से बहिर्विषयक ज्ञान लुप्त हो गया है—फलतः यथार्थ-धर्म भी लुप्त हो गया है। संतान-धर्म का पुनरुद्धार करना हो तो पहले वहिर्विषयक ज्ञान का प्रचार आवश्यक है। इस समय इस देश में वहिर्विषयक ज्ञान नहीं; सिखाये, ऐसा आदमी नहीं; हम लोग लोक-शिक्षा में दक्ष नहीं। इसलिए दूसरे देश से बहिर्विषयक ज्ञान लाना होगा। अङ्गरेज वहिर्विषयक ज्ञान में बड़े पण्डित हैं, लोक-शिक्षा में बड़े दक्ष। इसलिए हम अँगरेजों को राजा बनायेंगे। अङ्गरेजी शिक्षा से इस देश के लोग बहिस्तत्व में सुशिक्षित होकर अन्तस्तत्व समझने में सक्षम

होंगे। तब सन्तान-धर्म के प्रचारक में बाधा नहीं रहेगी, तब यथार्थ धर्म अपने आप फिर से जागेगा। जितने दिनों तक वैसा नहीं होता, जितने दिनों तक हिन्दू फिर ज्ञानवान्, गुणवान और बलवान नहीं होते उतने दिनों तक अङ्गरेजों का राज्य अक्षय रहेगा। अङ्गरेजों के राज्य में प्रजा सुखी होगी; निष्कण्टक होकर धर्माचरण करेगी। इसीलिए धीरन, अङ्गरेजों से युद्ध में निरस्त होकर मेरा अनुसरण करो।'

सत्यानन्द ने कहा—हे महात्मन! अगर अङ्गरेज को राजा बनाना ही आपका अभिप्राय है, अगर इस समय अङ्गरेजों का राज्य ही देश के लिए कल्याणकर है, तो हम लोगों को इस नृशंसयुद्ध-कार्य में आपने क्यों नियुक्त किया था!

महापुरुष ने कहा—अङ्गरेज इस समय वणिक् हैं—अर्थ-संग्रह की ही तरफ ध्यान है, राज्य-शासन का भार नहीं लेना चाहते। इस संतान विद्रोह के कारण वे राज्य-शासन भार लेने को बाध्य होंगे; क्योंकि राज्य-शासन के बिना अर्थ-संग्रह नहीं होगा। अङ्गरेज राज्य में अभिषिक्त होंगे; इसीलिए सन्तान विद्रोह हुआ है। इस समय चलो, ज्ञान प्राप्त करके तुम स्वयं सब बातें समझ जाओगे।

सत्यानन्द—हे महात्मन्, मैं ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा नहीं रखता—ज्ञान की मुझे आवश्यकता नहीं। मैं जिस व्रत में व्रती हुआ हूँ, उसी का पालन करूँगा। आशीर्वाद दीजिए, मेरी मातृ-भक्ति बनी रहे।

महापुरुष—व्रत सफल हुआ है—तुमने माता का मङ्गल किया है—अङ्गरेजों का राज्य स्थापित किया है, युद्ध और विग्रह छोड़ो। तुम्हारे किये काम में आदमी लगें। पृथ्वी शस्यशालिनी हो, लोगों की श्रीवृद्धि हो।'

सत्यानन्द के नेत्रों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने कहा—शत्रुओं के रक्त से सिक्त करके माता को शस्यशालिनी करूँगा।

महापुरुष—शत्रु कौन है? शत्रु अब नहीं। अङ्गरेज मित्र राजा हैं। अब अङ्गरेजों से लड़ाई में जीत सके, ऐसी ताकत किसी में नहीं।

सत्यानन्द—न हो, यहीं इस मातृ-प्रतिमा के सामने देह त्यागूँगा।

महापुरुष—अज्ञान में ! चलो, ज्ञान प्राप्त करो, चलो। हिमालय शिखर पर मातृ-मन्दिर है, वहाँ से तुम्हें मातृ-मूर्ति दिखायेंगे।

इतना कहकर महापुरुष ने सत्यानन्द का हाथ पकड़ा। कैसी अपूर्व शोभा ! उस गम्भीर विष्णु-मन्दिर में प्रकाण्ड चतुर्भुज मूर्ति के सामने, क्षीण प्रकाश में, वे महाप्रतिभापूर्ण दो पुरुष-मूर्तियाँ शोभित हैं—एक ने दूसरे का हाथ पकड़ा है। किसने किसे पकड़ा है ? ज्ञान ने आकर भक्ति को पकड़ा है—धर्म ने आकर कर्म को पकड़ा है, विसर्जन ने आकर प्रतिष्ठा को पकड़ा है—कल्याणी ने आकर शांति को पकड़ा है। ये सत्यानन्द ही शांति हैं—ये महापुरुष ही कल्याणी। सत्यानन्द प्रतिष्ठा है—महापुरुष विसर्जन।

विसर्जन आकर प्रतिष्ठा को ले गया।

* समाप्त *